श्रुत प्रकाशन महापर्व 'श्रुत पंचमी' के पावन अवसर पर प्रकाशित

श्री इन्द्रनन्दि-आचार्य-विरचित

श्रुतावतार

हिन्दी अनुवाद

पं. विजयकुमार शास्त्री एम.ए.
श्री महावीरजी

***

प्रकाशन सौजन्य
श्री अजयकुमार आदित्यकुमारजी जैन
हमीदिया रोड, भोपाल

***

प्रकाशक
अखिल भारत वर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

भूमिका

आचार्य इन्द्रनन्दि और उनका श्रुतावतार

श्रीमद्-इन्द्रनन्दि आचार्य विरचित "श्रुतावतार" नामक प्रस्तुत गौरवशाली ग्रन्थ श्रमण जैन परम्परा का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। एकसौ सत्तासी संस्कृत पद्यों वाला यह ग्रन्थ जहाँ एक श्रेष्ठ काव्य है, वहीं प्राचीन भारतीय इतिहास की लेखन-परम्परा का एक आदर्श, दुर्लभ एवं बहुमूल्य ग्रन्थ भी है। हमारे प्राचीन आचार्यों ने स्व-पर कल्याण एवं निरन्तर परम्परा जीवंत रखने के उद्देश्य से यद्यपि तत्वज्ञान-विज्ञान, धर्म, दर्शन, साहित्य, संगीत, पुराण, काव्य, गणित, कला, कोष, व्याकरण एवं आयुर्वेद आदि सभी विषयों से संबंधित विपुल साहित्य चित्रण जिस तरह प्रस्तुत "श्रुतावतार" ग्रन्थ में किया है, वैसे सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में बहुत कम उपलब्ध हैं।

वस्तुत. जैनधर्म-दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य की समृद्धि और उसकी प्राचीन परम्परा का जो योगदान है, उसका अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर जो महत्व, गौरव एवं मूल्यांकन प्राप्त होना चाहिए वह कुछ पक्षपातवश भी नहीं हो रहा है। उसके उचित प्रचार-प्रसार की दिशा में कमी के भागीदार, उस सम्पूर्ण विरासत के उत्तराधिकारी हम लोग भी कम नहीं हैं? किन्तु अब जैसे-जैसे भारतीय इतिहास, साहित्य, कला-संस्कृति, भाषा विज्ञान एवं पुरातात्विक साक्ष्यों आदि का अध्ययन हो रहा है वैसे-वैसे श्रमण संस्कृति की प्राचीनता एवं समृद्धि आदि का अध्ययन भी आगे बढ़ रहा है। जैनेतर विद्वान भी इसमें ज्यादा रुचि लेने लगे हैं। हमारे आचार्यों ने विविध विधाओं में साहित्य की रचना तो विपुल मात्रा में की किन्तु उन्होंने अपने एवं अपनी परम्परा के विषय में बहुत कम सूचनायें दीं। वस्तुतः आत्म-श्लाघा से दूर रहकर स्व-पर कल्याण ही उनके जीवन एवं साहित्य सृजन का उद्देश्य था। इससे ज्यादा प्रमाण और क्या हो सकता है कि प्रस्तुत श्रुतावतार ग्रन्थ में आचार्य इन्द्रनन्दि ने जैन परम्परा का बहुत ही सुन्दर इतिहास संजोया है किन्तु उन्होंने अपने नाम के अतिरिक्त स्वयं अपने विषय में अथवा अपनी परम्परा के विषय में कोई जानकारी नहीं दी।

जैन साहित्य के इतिहास में 'इन्द्रनन्दि' नाम के लगभग पाँच आचार्यों का नामोल्लेख विभिन्न प्रसंगों, विभिन्न ग्रन्थकर्ताओं, परम्पराओं के समय का निर्धारण इस ग्रन्थ से ही हम कर सकते हैं। चूंकि इन्होंने आचार्य वीरसेन (९वीं शती) एवं जिनसेन (१०वीं शती) तक के ही आचार्यों और इनकी धवला, जयधवला टीकायें, जो कि क्रमशः षट्खण्डागम तथा कसायपाहुडसुत्त पर लिखी गई हैं, के ही विस्तृत परिचय अपने इस श्रुतावतार ग्रन्थ में लिखे हैं। इनके बाद के आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (११वीं शती) आदि और उनकी रचनाओं का विवरण नहीं दिया। इससे सिद्ध होता है कि इन्द्रनन्दि १०वीं शती के आचार्य हैं। इन्द्रनन्दि की यही एकमात्र कृति है। किन्तु इस एकमात्र उत्कृष्ट कृति से इतिहास-साहित्य को समृद्ध करके वे सदा के लिए अमर हो गये। इस कृति में उनकी विद्वत्ता, विविध शास्त्रों एवं उनके विषयों का तलस्पर्शी ज्ञान तथा अपने समय तक की सम्पूर्ण जैन परम्परा का अच्छा ज्ञान प्रत्येक श्लोक में स्पष्ट झलकता है। उस समय परस्पर संपर्क, जानकारी आदि साधनों का बहुत अभाव था, फिर भी इन सबके बावजूद इतना विस्तृत विवरण संजोकर ग्रन्थ रूप में सफलतापूर्वक निबद्ध कर लेना, बहुत बड़ी बात है। श्रुतावतार की भाषा, शैली, भाव एवं विषय आदि देखते ही बनता है। गणधर के अभाव में जब

तीर्थंकर महावीर की दिव्यध्वनि छियासठ दिन तक नहीं खिरी, तब इन्द्र छात्र का वेश धारण करके गौतमग्राम की ब्राह्मणशाला में जाकर गौतम से पढ़ते समय उनसे जिस छन्द का अर्थ पूछता है वह इस दृष्टि से द्रष्टव्य है-

षड्द्रव्यनवपदार्थत्रिकालपञ्चास्तिकायषट्कायान्।
विदुषां वरः स एव हि यो जानाति प्रमाण नयैः ॥५२॥

इसके आगे और पूर्व के प्रसंग भी अत्यन्त सरल, सुबोध एवं थोड़े शब्दों में अधिक भावों की अभिव्यंजना की क्षमता रखते हैं। उनके पास अपने सीमित साधनों से जितना और जिस रूप में बन सका, उन्होंने दिगम्बर परम्परा का इतिहास लिखा। यद्यपि अन्य ग्रन्थों में भी हमारी आचार्य परम्परा के उल्लेख मिलते हैं किन्तु अनेक दृष्टियों से इस श्रुतावतार का बहुत महत्त्व है।

श्रुत शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ करते हुए आचार्य पूज्यपाद ने कहा है 'तदावरणकर्म क्षयोपशमे सति निरूप्यामाणं श्रूयते अनेन श्रवणमात्रं वा श्रुतम् (सर्वार्थसिद्धि १.९.) तथा-केवलिभिरुपदिष्टं बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तगणधरानुस्मृतं ग्रन्थरचनं श्रुतं भवति' (सर्वार्थसिद्धि ६.१३) अर्थात् श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर निरूप्यमाण जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनता है या सुनना मात्र 'श्रुत' कहलाता है तथा केवली द्वारा उपदिष्ट और अतिशय बुद्धि-ऋद्धियुक्त गणधरदेव, उनके उपदेशों का स्मरण करके जो ग्रन्थों की रचना करते हैं वह 'श्रुत' कहलाता है

आचार्य अकलंकदेव के अनुसार ''श्रुत'' शब्द कर्म साधन भी होता है। श्रुतज्ञानावरण कर्म क्षयोपशम आदि अंतरंग-बहिरंग कारणों के सन्निधान होने पर जो सुना जाय वह 'श्रुत' है। कर्तृसाधन में श्रुत परिणत आत्मा ही सुनता है वह 'श्रुत' है। करण (भेद) विवक्षा में जिससे सुना जाता है वह 'श्रुत' है और भाव साधन में श्रवण क्रिया मात्र को 'श्रुत' कहते हैं। (तत्त्वार्थवार्तिक १.९.२.)

इस तरह के 'श्रुत' के अवतरण की परम्परा और उसका वृत्तान्त इन्द्रनंदि ने अपने इस ग्रन्थ में प्रतिपादित किया है। इसमें उन्होंने भरत क्षेत्र की स्थिति, सुषमा-सुषमादि काल के भेदों का विवेचन कुलकर व्यवस्था का क्रमशः प्रतिपादन करते हुए प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर अन्तिम एवं चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान महावीर तक की परम्परा और उनकी विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन किया है। तीर्थंकर महावीर और उनके गणधरों का विशेषकर गौतम गणधर का कुछ विस्तार से वृत्तान्त प्रस्तुत करते हुए उनके बाद की परम्परा का और वर्तमान में आंशिक रूप में उपलब्ध श्रुत (आगमज्ञान) के मूल का कालक्रमानुसार जो इतिहास प्रस्तुत किया है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। पद्य संख्या ७५ में कहा है -गौतम गणधर, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी अनुबद्ध केवली की सम्पदा को प्राप्त थे। इनके मोक्ष चले जाने के बाद ही इस भरत क्षेत्र से केवलज्ञान रूप सूर्य अस्त हो गया। अर्थात् इनके बाद किसी को केवलज्ञान नहीं हुआ। जम्बू-स्वामी के बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु- ये पांच श्रुत केवली हुए। इसके बाद विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृति, विजय, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन- ये ग्यारह आचार्य दशपूर्वधारी हुए। इनके बाद नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस- ये पाँच एकादशांगधारी हुए तथा इनके बाद सुभद्र, अभयभद्र, जयबाहु और लोहार्य- ये चारों आचारांगधारी हुए। इनके बाद की भी यहाँ आचार्य परम्परा प्रस्तुत की गई है किन्तु षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों एवं कुछ पट्टावलियों में उपलब्ध परम्परा से कुछ नामों में यहाँ अन्तर सम्भवतः प्राकृत भाषा से संस्कृत

रूपान्तर एवं लिपि आदि के कारण ही प्राप्त होता है। आ. अर्हद्बलि द्वारा जैन परम्परा में विभिन्न संघों की स्थापना आदि का भी संक्षेप में यहाँ वृत्तान्त दिया गया है। आचार्य अर्हद्बलि के बाद माघनन्दि का भी यहाँ उल्लेख है। इसके बाद आचार्य धरसेन और फिर इनके द्वारा आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि को प्रदत्त श्रुतज्ञान, षट्खण्डागम नामक ग्रन्थराज पुस्तकारूढ़ होने, श्रुत पंचमी पर्व प्रचलित होने आदि से लेकर आचार्य गुणधर एवं उनके द्वारा रचित कसायपाहुडसुत्त तथा दोनों सिद्धान्त ग्रन्थों पर रचित धवला एवं जयधवला टीका आदि का विस्तृत परिचय जिस भाषा, भाव और शैली में प्रस्तुत किया गया है वह मर्मस्पर्शी एवं हृदयग्राही है।

इस गौरवशाली अपनी प्राचीन परम्पराओं का जब-जब हम अध्ययन करते हैं तब-तब हमें षट्खण्डागम के प्राक्कथन (भाग १ पृष्ठ ५-७) में सुप्रसिद्ध मनीषी विद्वान स्व. डॉ. हीरालाल जैन द्वारा प्रस्तुत मार्मिक विचारों की ओर ध्यान जाता है, जिसमें उन्होंने कहा है कि- 'हृदय के पवित्र और दृढ़ता के लिए हमारा ध्यान पुनः हमारे तीर्थंकर भ. महावीर और उनकी धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि तक की आचार्य परम्परा की ओर जाता है, जिसके प्रसाद से हमें यह साहित्य प्राप्त हुआ है। तीर्थंकरों और केवलज्ञानियों का जो विश्वव्यापी ज्ञान द्वादशांग साहित्य में ग्रथित हुआ था, उससे सीधा सम्बन्ध रखने वाला केवल इतना ही साहित्यांश बचा है, जो धवला, जयधवला और महाधवला कहलाने वाले ग्रन्थों में निबद्ध है। दिगम्बर मान्यतानुसार शेष सब काल के गाल में समा गया। किन्तु जितना भी शेष बचा है वह भी विषय और रचना की दृष्टि से हिमालय जैसा विशाल और महोदधि जैसा गंभीर है। हम ऐसी उच्च और विपुल साहित्यिक सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हैं- इसका हमें भारी गौरव है। आजकल साहित्य रक्षा का इससे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं कि ग्रंथों की हजारों प्रतियाँ छपाकर सर्वत्र फैला दी जाय ताकि किसी भी अवस्था में उनका अस्तित्व बना रहे।

इस तरह श्रुत (शास्त्र) परम्परा की रक्षा का सबसे अच्छा उपाय है- इसके अध्ययन-अध्यापन एवं स्वाध्याय की परम्परा जीवित रखना और दुर्लभ साहित्य का प्रकाशन करना। इस दृष्टि से पूज्य १०८ आचार्यश्री विमलसागरजी की हीरक जयन्ती की सर्वाधिक सार्थकता इस उपलक्ष्य में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन है। इस योजना के मूलप्रेरक पूज्य उपाध्याय श्री भरतसागरजी एवं पूज्य आर्यिका स्याद्वादमती माताजी के इस योजना को साकार रूप देने के लिए कृतज्ञ हैं। श्री अनेकान्त विद्वत्-परिषद्, सोनागिरि के माध्यम से प्रकाशित इस ग्रन्थ के अनुवादक मान्यवर पं. विजयकुमारजी शास्त्री एवं सम्पादक उपाध्याय श्री भरतसागरजी महाराज हैं। उत्साही युवा विद्वान ब्र. धर्मचन्द शास्त्री तथा ब्र. कु. प्रभा पाटनी बधाई के पात्र हैं। इसी तरह स्तरीय, दुर्लभ तथा उपयोगी सत्साहित्य का प्रकाशन, प्रचार-प्रसार और स्वाध्याय निरन्तर होता रहे, यही हमारी शुभ भावना है। साथ ही विद्वानों और समाज के कर्णधारों से यह भी आग्रह है कि वे इन महत्वपूर्ण ग्रन्थों को विद्यालयों एवं विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रमों में भी सम्मिलित कराने हेतु प्रयत्न अवश्य करें, ताकि इनके महत्व का सही मूल्यांकन हो सके।

डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी
अध्यक्ष, जैन दर्शन विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी- २२१००२

दि. २८-११-९०
निवास- बी ३/२ लेन नं. १३
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी-५

श्रीमद्-इन्द्रनन्दि-आचार्य-विरचित:

श्रुतावतार:

सर्वनाकीन्द्रवन्दितकल्याणपरम्परं देवम् ।

प्रणिपत्य वर्धमानं श्रुतस्य वक्ष्येऽहमवतारम् ॥१॥

अन्वयार्थ- (अहम्) मैं, ग्रन्थकर्ता इन्द्रनन्दी (सर्वनाकीन्द्रवन्दितकल्याणपरम्परं) समस्त देवेन्द्रों द्वारा वन्दित कल्याण परम्परा वाले (देवं) देवाधिदेव वीतराग देव (वर्धमानं) अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्धमान स्वामी को (प्रणिपत्य) नमन करके (श्रुतस्य) श्रुतज्ञान के निधान रूप आगम-शास्त्रों के (अवतारं) अवतरण का उत्पत्ति को (वक्ष्ये) कहूँगा या कहता हूँ।

अर्थ- श्री इन्द्रनन्दी आचार्य ग्रन्थ-रचना की प्रतिज्ञा करते हुए तथा ग्रन्थ का 'श्रुतावतार' नाम देते हुए सर्वप्रथम उन महावीर भगवान को नमस्कार करते हैं जिनका एक नाम वर्द्धमान है जिनके गर्भ-जन्म-दीक्षा-ज्ञान एवं मोक्ष कल्याणकों की पूजा समस्त देवों के अधीश्वरों इन्द्रों द्वारा की गई है। उन चौबीसवें अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमान भगवान् को शिर झुकाकर नमस्कार करने रूप मंगलाचरण के अनन्तर वे ग्रन्थ रचना का संकल्प करते हैं और अपने इस रचे जाने वाले ग्रन्थ का नाम 'श्रुतावतार' देते हैं। 'अहं वक्ष्ये' इस पद के द्वारा ग्रन्थ के प्रामाणिक होने की सूचना मिलती है क्योंकि निर्ग्रन्थ दिगम्बर वीतराग सन्तों के वचन कभी अप्रामाणिक, असत्य नहीं होते। 'सर्वनाकीन्द्रवन्दितकल्याणपरम्परं देवं' पदों द्वारा भगवान् वर्द्धमान स्वामी का महत्व प्रतिपादित करते हुए उन्हें शिर झुकाने का, नमस्कार करने का औचित्य प्रतिपादित किया गया है।

यद्यप्यनाद्यनिधनं श्रुतं तथाऽप्यत्र तन्निभेन मया ।

कालाश्रयेण तस्योत्पत्तिविनाशौ प्रयक्ष्येते ॥२॥

अन्वयार्थ- (यद्यपि) चूँकि (श्रुतं) श्रुतज्ञान भाव श्रुत (अनाद्यनिधनं) अनादि व अनिधन आदि-अन्तरहित है (तथापि) तो भी (अत्र) यहाँ ग्रन्थ रचना के प्रसंग में (तन्निभेन) उसी के समान (मया) मेरे आचार्य इन्द्रनन्दि द्वारा (कालाश्रयेण) काल के आश्रय से समय की अपेक्षा से (तस्य) उस श्रुत की,

(उत्पत्ति विनाशौ) उत्पत्ति और विनाश/ उत्पन्न होना और विनष्ट होना (प्रवक्ष्येते) यहाँ कहे जायेंगे/ कहे जाते हैं।

अर्थ– यद्यपि भावश्रुत एवं द्रव्यश्रुत इनमें भाव की अपेक्षा श्रुत अनादि अनिधन है (न कभी उत्पन्न हुआ और न कभी विनष्ट होगा) पर द्रव्यश्रुत-शास्त्र परम्परा कालाश्रित है- वह योग्य काल में ज्ञानी, निर्ग्रन्थ, वीतरागी सन्तों द्वारा ज्ञान की प्रकर्षता में तथा बाह्य निर्विघ्नताओं में शास्त्र रचना के रूप में उत्पन्न भी होता है और ज्ञान की अप्रकर्षता तथा बाह्य विघ्न बाधाओं के रहते हुए विनाश को भी प्राप्त होता रहता है। उसी के समान आत्मदृष्टि से न जन्म लेने वाले, न मरने वाले किन्तु शरीर दृष्टि से जन्म और मरण करने वाले मेरे द्वाराउस श्रुत-द्रव्यश्रुत रूप शास्त्र-परम्परा की उत्पत्ति और विनाश यहाँ कहे जायेंगे अर्थात कहे जाते हैं।

भरतेऽस्मिन्नवसर्पिण्युत्सर्पिण्याह्वयौ प्रवर्त्तेते।
कालौ सदाऽपि जीवोत्सेधायुर्ह्रासवृद्धिकरौ ॥३॥

अन्वयार्थ– (अस्मिन्) इस (भरते) भरत क्षेत्र में (जीवोत्सेधायुर्ह्रासवृद्धिकरौ) जीवों की ऊँचाई, आयु आदि में ह्रास तथा वृद्धि करने वाले (अवसर्पिण्युत्सर्पिण्याह्वयौ) अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी नाम के (कालौ) दो काल (सदा) नित्य ही (प्रवर्त्तेते) प्रवर्तित होते हैं।

अर्थ– जम्बू द्वीप के छह क्षेत्रों में दक्षिण ध्रुव में भरत और उत्तर ध्रुव में ऐरावत क्षेत्र हैं। इन दोनों क्षेत्रों में कालचक्र का प्रवर्तन होता है। प्रथमतः काल चक्र दो रूपों- अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के रूप में प्रवर्तित होते हैं। इनमें अवसर्पिणी का तात्पर्य ह्रास अर्थात् नीचे की ओर जाने वाला तथा उत्सर्पिणी का अर्थ उत्कर्ष-ऊपर की ओर जाने वाला है। अवसर्पिणी में जीवों की ऊँचाई, आयु, बल, बुद्धि, मति, सुख सम्पदा विचार आदि ह्रास को प्राप्त होते हैं, इसके विपरीत उत्सर्पिणी में इन सब वस्तुओं में वृद्धि होती है।

जैसे सर्प फन की ओर से पूँछ तक मोटाई में घटता जाता है। वैसे ही अवसर्पिणी में क्रमशः सभी उत्तम वस्तुओं में ह्रास या घटती होती जाती हैं जबकि पूँछ की ओर से फन तक सर्प जैसे मोटा होता जाता है वैसे ही उत्सर्पिणी में सभी उत्तम वस्तुएँ वृद्धिगत होती जाती हैं।

एकैकस्य पृथग्दशकोटीकोट्यः प्रमाणमुद्दिष्टम्।
वार्ध्युपमानावेतौ समाश्रितौ भवति कल्प इति ॥४॥

अन्वयार्थ– (पृथक्) अलग-अलग (एकैकस्य) एक-एक का (अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी का (दश कोटी कोट्यः)- दश कोड़ा कोड़ी (एक करोड़×एक करोड़ - एक कोड़ा-कोड़ी·दश = दश कोड़ा-कोड़ी) (वार्ध्युपमानौ) सागर प्रमाण (एतौ) ये दोनों अवसर्पिणी एवम् उत्सर्पिणी (समाश्रितौ) सागर प्रमाण होकर (कल्प इति) कल्प नामवाला (भवति) होता है।

अर्थ– अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी अलग-अलग दश-दश कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण हैं और दोनों मिलकर बीस कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण एक 'कल्प' काल कहलाता है।

अवसर्पिणी दश कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है उत्सर्पिणी भी दश कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण हैं। दोनों मिलकर बीस कोड़ा-कोड़ी सागर काल को एक कल्प काल कहते हैं।

तत्रावसर्पिणीयं प्रवर्तमाना भवेत्समाऽस्याश्च।
कालविभागाः प्रोक्ताः षडेव कालप्रभेदज्ञैः ॥५॥

अन्वयार्थ– (काल प्रभेदज्ञैः) काल के भेदों को जानने वाले (वीतराग भगवन्तों द्वारा) (षट्) छह (एव) ही (काल विभागाः) काल के विभाग (प्रोक्ता) कहे गये हैं। (तत्र) उन काल विभागों में (इयं) यह वर्तमान (अवसर्पिणीयं प्रवर्तमाना) अवसर्पिणी जिसमें उत्सेध-आयु आदि की घटती है वह प्रवर्तमान है (चल रहा है), (अस्याः) इस अवसर्पिणी के समान उत्सर्पिणी के भी छह काल-भेद हैं।

अर्थ–काल के भेदों के जानने वाले जिनेन्द्र सर्वज्ञ भगवन्तों ने उन अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी प्रत्येक के छह-छह काल विभाग बताये हैं। अवसर्पिणी के छह और उत्सर्पिणी के भी छह।

सुषमसुषमाह्वयाद्या सुषमाऽन्या सुषमदुःषमेत्यपरा।
दुष्षमसुषमान्या दुष्षमाऽतिपूर्वा पराऽस्यैव ॥६॥

अन्वयार्थ– (सुषमसुषमाह्वयाद्या) सुषमा सुषमा नामका आदिम प्रथम

काल है (सुषमान्या) सुषमा दूसरा काल है (सुषमा-दुषमा) उससे बाद का तीसरा काल सुषमा दुषमा है। (दुषम सुषमान्या) दुषमा सुषमा उससे आगे का चौथा काल है। (दुष्षमाऽतिपूर्वा) दुषमा अन्तिम काल से पूर्व का पञ्चम काल है। (परास्यैव) इसी अवसर्पिणी का अन्तिम छठा काल दुषमा-दुषमा है।

अर्थ- अवसर्पिणी का पहला काल सुषमा-सुषमा है। दूसरा काल सुषमा, तीसरा सुषमा-दुषमा चौथा दुषमा-सुषमा पाँचवाँ-दुषमा तथा छठा काल दुषमा-दुषमा है।

उत्सर्पिणी के क्रमशः (१) दुषमा-दुषमा (२) दुषमा (३) दुषमा-सुषमा (४) सुषमा-दुषमा (५) सुषमा तथा (६) सुषमा-सुषमा हैं।

तत्र क्रमाच्चतस्रस्तिस्रो द्वे सागरोपमाख्यानाम्।

कोटीकोट्यस्तिसृणामाद्यानां भवति परिमाणम् ॥७॥

अन्वयार्थ- (तत्र) इन छह कालों में, (आद्यानां तिसृणां) आदि के तीन कालों की (सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा दुषमा की (क्रमात्) क्रम से (कोटी कोट्यः) कोड़ा-कोड़ी (चतस्र) चार (तिस्रः) तीन तथा (द्वे सागरोपमाख्यानाम्) दो सागर प्रमाणं (परिमाणं) स्थिति (भवति) होती है।

अर्थ- उन छह कालों में से आदि के तीन कालों की क्रमशः- सुषमा-सुषमा, सुषमा तथा सुषमा दुषमा की चार कोड़ा-कोड़ी, तीन कोड़ा-कोड़ी तथा दो कोड़ा-कोड़ी सागर की स्थिति होती है-

सुषमा-सुषमा- चार कोड़ा-कोड़ी सागर

सुषमा-तीन कोड़ा-कोड़ी सागर,

सुषमा-दुषमा- दो कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण स्थिति वाले हैं।

कोटीकोटीवर्षसहस्रै रेतैश्चतुर्दशभिरूना।

त्रिगुणैरम्भोधीनां परिमाणं भवति तुर्यायाः ॥८॥

अन्वयार्थ- (तुर्यायाः) चौथी अवसर्पिणी दुषमा सुषमा का (समय) (त्रिगुणैः) तीन गुणित (चतुर्दशभिः) चौदह (१४×३= ४२) (वर्ष सहस्रैः) हजार वर्ष (ऊना) कम (अम्भोधीनां) सागरों के कोटी कोट्य-कोड़ा-कोड़ी अर्थात् ब्यालीस सहस्र वर्ष न्यून कोड़ा-कोड़ी सागर (परिमाणं भवति) परिमाण होता है।

अर्थ– अवसर्पिणी के चतुर्थ दुषमा-सुषमा काल की स्थिति ब्यालीस हजार वर्ष न्यून एक कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण होती है।

एकोत्तरविंशत्या वर्षसहस्रैर्मिता समोपान्त्या।
तावद्भिरेव कलिता वर्षसहस्रैः समा षष्ठी ॥९॥

अन्वयार्थ– (उपान्त्या समा) उपान्त्य-अन्तिम से पहले की अवसर्पिणी अर्थात् अवसर्पिणी का पञ्चम काल (वर्ष सहस्रैः) हजार वर्षों के (एकोत्तर विंशत्या) इक्कीस के (मिता) परिमित है। (तावद्भिरेव) उतने ही (वर्षसहस्रै) हजार वर्षों से (षष्ठी समा) अवसर्पिणी का षष्ठ काल भी (कलिता) बना हुआ है- अर्थात् षष्ठ काल भी उतने ही वर्षों से बना है।

अर्थ– अन्तिम से पहला उपान्त्य कहलाता है। षष्ठ दुषमा-दुषमा काल अवसर्पिणी का अन्तिम काल है उससे पहले का पाँचवाँ दुषमा काल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण है तथा छठा दुषमा-दुषमा काल भी इक्कीस हजार वर्ष का है।

धनुषां षट्चत्वारि द्वे च सहस्रे शतानि पञ्चैव।
हस्ताः सप्तारत्निः षट्कालिकमानतोत्सेधः ॥१०॥

अन्वयार्थ– (धनुषां) धनुषों के (षट् चत्वारि च द्वे सहस्रे) छह, चार तथा दो हजार (च पञ्चच शतानि) तथा पाँच सौ (सप्त हस्ता) सात हाथ (अरत्नि) प्रायः एक हाथ (षट्कालिक मानता) छह कालों का, मानता-प्रमाण (उत्सेध) ऊँचाई है।

अर्थ– सुषमा-सुषमादि छह कालों के प्रारम्भ में क्रमशः छह हजार धनुष, चार हजार धनुष, दो हजार धनुष, पाँच सौ धनुष, सात हाथ एवं अरत्नि (प्रायः एक हाथ) शरीर की ऊँचाई का प्रमाण है।

१- सुषमा-सुषमा काल के प्रारम्भ में छह हजार धनुष प्रमाण मनुष्य शरीर की ऊँचाई होती है। (तीन कोश प्रमाण)

२- सुषमा नामक अवसर्पिणी के दूसरे काल के प्रारम्भ में चार हजार धनुष प्रमाण की ऊँचाई होती है। अर्थात् दो कोश।

३- सुषमा-दुषमा नामक तीसरे अवसर्पिणी काल में दो हजार धनुष अर्थात् एक कोश प्रमाण शरीर की ऊँचाई होती है।

४- दुषमा-सुषमा नामक पाँचवें काल में पाँच सौ धनुष प्रमाण शरीर की ऊँचाई होती है।

५- दुषमा नामक पञ्चम काल के प्रारम्भ में सात हाथ प्रमाण शरीर की ऊँचाई होती है।

६- अति दुषमा काल के प्रारम्भ में एक अरत्नि प्रमाण अर्थात् एक हाथ शरीर की ऊँचाई होती है।

पल्यानि त्रीणि द्वे तथैककं वर्षपूर्वकोटी च
विंशच्छतं च विंशतिरब्दानां तन्नृणामायुः ॥११॥

अन्वयार्थ-(तन्नृणा) उन अवसर्पिणी के छह कालों के लोगों की (आयु) शरीर स्थिति (त्रीणि पल्यानि) तीन पल्य (द्वे) दो पल्य (तथा एककं) तथा एक पल्य एवं (वर्ष पूर्व कोटि) एक पूर्व कोटि वर्ष (च) और (अब्दानां) वर्षों के (विंशच्छतं) एक सौ बीस वर्ष (विंशति) और बीस वर्ष होती है।

अर्थ- अवसर्पिणी के उन छह कालों के मनुष्यों की आयु क्रमशः सुषमा-सुषमा काल के मनुष्यों की तीन पल्य, सुषमा काल के मनुष्यों की दो पल्य, सुषमा-दुषमा नामक तीसरे काल के मनुष्यों की आयु एक पल्य दुषमा-सुषमा नाम के चतुर्थ काल के मनुष्यों की आयु एक कोटि पूर्व वर्ष, दुषमा नामक पञ्चम काल के मनुष्यों की आयु एक सौ बीस वर्ष तथा अति दुषमा नामक छठे काल के मनुष्यों की आयु मात्र बीस वर्ष होती है।

तत्राद्ययोर्व्यतीते समये सम्पूर्णयोस्तृतीयायाः।
पल्योपमाष्टमांशन्यूनायाः कुलधरा ये स्युः ॥१२॥

अन्वयार्थ-(तत्र) उस अवसर्पिणी काल में (सम्पूर्णयोः) पूरे (आद्ययोः) आदि के दो (सुषमा-सुषमा व सुषमा) कालों के (व्यतीते) निकल जाने पर (तृतीयायाः) तीसरे के (पल्योपमाष्टमांशन्यूनाया) पल्य के अष्टमांशभागकम (समये) समय पर जाने पर (ये) जो (कुलधराः) कुलकर (स्युः) हुए।

अर्थ- उस अवसर्पिणी काल में आदि (प्रारम्भ) के दो कालों के पूर्ण व्यतीत हो जाने पर और तृतीय काल में पल्य के अष्टम अंश भाग-प्रमाण समय रह जाने पर जो कुलकर हुए वे इस प्रकार हैं-

तेषामाद्यो नाम्ना प्रतिश्रुतिः सन्मतिर्द्वितीयः स्यात्।
क्षेमङ्करस्तृतीयः क्षेमन्धरसञ्ज्ञितस्तुर्यः ॥१३॥
सीमङ्करस्तथाऽन्यः सीमन्धरसाह्वयो विमलवाहः।
चक्षुष्माँश्च यशस्वानभिचन्द्रश्चन्द्राभनामा च ॥१४॥
मरुदेवनामधेयः प्रसेनजिन्नाभिराजनामाऽन्त्यः।
हामाधिक्कारानन्नुशासति निजतेजसः स्खलितान् ॥१५॥

अन्वयार्थ– (तेषां) उन कुलकरों का (आद्य) प्रथम (नाम्ना) नाम से (प्रतिश्रुति) प्रतिश्रुति (द्वितीयः) दूसरा (सन्मतिः स्यात्) दूसरा सन्मति है (तृतीयः) तीसरा (क्षेमङ्करः) क्षेमंकर (तुर्यः) चतुर्थ (क्षेमन्धर संज्ञिनः) क्षेमन्धर नाम वाला (तथाऽन्यः) इसके पश्चात् (अन्यः) दूसरा सीमंकर (सीमन्धर साह्वयो विमलवाहः) सीमन्धर नाम सहित विमलवाह च (चक्षुष्मांश्च यशस्वानभिचन्द्राभनामा च) चक्षुष्मान् यशस्वान अभिचन्द्र तथा चन्द्राभ नाम वाला (मरुदेव नामधेयः) मरुदेव नामक (प्रसेनजिन्नाभिराजनामान्त्यः) प्रसेनजित् तथा अन्तिम नाभिराज (निजतेजसः) अपनी तेजस्विता से (स्खलितान्) मर्यादाओं से च्युत होने वाले लोगों को (हामाधिक्कारात्) हा! हाय। मां! मतकरो। (धिक्कारात्) त्वांधिक् तुम्हें धिक्कार है इस वचन से (अनुशासति) अनुशासित करते थे।

अर्थ– वे कुलकर में थे- (१) प्रतिश्रुति (२) सन्मति (३) क्षेमंकर (४) क्षेमन्धर (५) सीमंकर (६) सीमन्धर (७) विमलवाह (न) (८) चक्षुष्मान (६) यशस्वान (१०) अभिचन्द्र (११) चन्द्राभ (१२) मरुदेव (१३) प्रसेनजित् एवं (१४) नाभिराज।

ये सब अपनी तेजस्विता से, मर्यादाओं को भंग करने वालों को हा! मा!! तथा धिक्!!!- इन तीन वचन दण्डों से ही अनुशासित करते थे।

हाकारं पञ्च ततो हामाकारं च पञ्च पञ्चान्ये।
हामाधिक्कारान्कथयन्ति तनोर्दण्डनं भरतः ॥१६॥

अन्वयार्थ–(हाकारं पञ्च) हा! शब्द को पाँच पहले के कुल-कर (हामाकारं च अन्ये पञ्च) हा! तथा मा मत करो शब्द को दूसरे पाँच तथा (अन्ये) (हामाधिक्कारान्) हा, मत करो तथा धिक्कार-इन शब्दों को बचे हुए अन्य कुलकर

(कथयन्ति) कहकर दण्ड देते थे। (भरतः) भरत जो कि १४ कुलकरों के अतिरिक्त १५वें कुलकर थे वे हा मा धिक के अतिरिक्त (तनोर्दण्डन) शरीर दण्डन भी करते थे।

अर्थ–प्रतिश्रुति से सीमंकर पर्यन्त पाँच कुलकर हा! शब्द से दण्ड देते थे। सीमन्धर से अभिचन्द्र तक ५ कुलकर 'हा!' तथा 'मा' शब्दों से दण्डित करते थे। चन्द्राभ से लेकर नाभिराज तक हा! मा, तथा धिक् तीनों शब्दों से दण्डित करते थे तथा भरत जो कि अन्तिम कुलकर नाभिराज के पुत्र थे वे इन तीनों शब्द दण्डों के अतिरिक्त शरीर दण्ड से भी अनुशासन करते थे। इस प्रकार कुलकरों के समय जन हृदय क्रमशः दूषित हो रहे थे।

रवितारालोकेभ्यस्त्रयो नृणामपनयन्ति भयमाद्याः।
दीपविचोदनमर्यादाऽनुवृत्तिवाहादिरोहणमः ।।१७ ।।
कथयन्ति तु चत्वारः सुतेक्षणाद्भीतिमपहरत्यन्यः।
नामकृतिं शशधरमभि शिशुकेलिं प्रकुरुतेऽन्यः ।।१८ ।।
जीवति सुतैः सहान्यो जलतरणं गर्भमलविशुद्धिं च।
नालनिकर्तनमपि च त्रयोऽपि परे व्यपदिशन्ति नृणाम् ।।१९ ।।

अन्वयार्थ– (आद्याः भयः) आदि के तीन (रवि तारालोकेभ्यः) सूर्य चन्द्र और ताराओं के दर्शन से उत्पन्न (भयं) डर (नृणां) उस समय के मनुष्यों का (अपनयन्ति) दूर करते हैं। (अतः) इससे आगे के (चत्वारः) चार कुलकर (दीप विचोदन मर्यादा वृत्ति वाहादिरोहं कथयन्ति) रात्रि में प्रकाश हेतु दीपक जलाना, कल्पवृक्षों की सीमा निर्धारित करना, बाड़ लगाना, सवारी करना आदि बताते हैं। (अन्य) अन्य कुलकर (सुत्तेक्षणात्) पुत्र के देखने से (भीतिं) भय को (अपहरति) दूर करता है। (शशधरमभि) अभिचन्द्र 'कुलकर' नामकृतिं पुत्रों का नाम लेकर बुला बुलाकर प्रसन्न होना, (अन्य) उससे और दूसरा कुलकर (चन्द्राभ नामकः) पुत्रों से क्रीड़ा करके प्रसन्न होना। (सुतैः) पुत्रों के साथ जीवित होना-पारिवारिक जीवन जीना, (जलतरणं) जल में नौकादि द्वारा, उस पार होना, (गर्भ मल विशुद्धिं) गर्भ के जरा आदि मल की विशुद्धि को (नालनिकर्तनम् अपि) नाल काटने आदि को परे-अन्तिम (त्रयोऽपि) तीन (नृणां) मनुष्यों को (व्यपदिशन्ति) शिक्षा देते हैं, बताते हैं।

अर्थ- चौदह कुलकरों ने भोगभूमि की समाप्ति और कर्म भूमि के प्रारम्भ में होने वाले परिवर्तनों से अनभिज्ञ होने से भयभीत मनुष्यों को निम्न प्रकार बताकर उनका भय निवारण कर उन्हें सुव्यवस्थित किया-

१- प्रतिश्रुति कुलकर ने सूर्य चन्द्रमा के उदय अस्त आदि के विषय में बताया।

२- सन्मति कुलकर ने सूर्य, चन्द्रमा तारों का गमन आदि बताया।

३- क्षेमङ्कर कुलकर ने उस समय पशुओं में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने वाली क्रूरता आदि को बताकर उनसे बचने का उपाय बताया।

४- क्षेमन्धर कुलकर ने उन क्रूर पशुओं को मानव समाज से अलग कर उनकी रक्षा की।

५- सीमंकर कुलकर ने कल्पवृक्षों के कम होने पर होने वाले संघर्ष से बचने के लिये इतने वृक्षों का उपयोग ये करें आदि सीमा कर दी।

६- सीमन्धर कुलकर ने एक-दूसरे की सीमाओं का उल्लंघन न करें यह बताया।

७- विमलवाह (न) ने हाथी घोड़ा आदि पशुओं पर सवारी करना सिखाया।

८- चक्षुष्मान कुलकर ने सन्तान को देखकर डरने से छुड़ाया।

९- यशस्वान ने-पुत्र मुख देखकर प्रसन्न होने का उपदेश दिया।

१०- अभिचन्द्र ने-बालकों की क्रीड़ा देखकर उससे प्रसन्न होना सिखाया, सन्तान को नाम लेकर बुलाना आदि सिखाया।

११- चन्द्राभ ने- सन्तान के जीवित रहने पर उसके साथ रहकर पारिवारिक जीवन सिखाया।

१२- मरुदेव ने- आजीविका का चिन्तन, नौका आदि द्वारा जल तिरने की विद्या सिखाई। आरोहण-सोपान लगाकर चढ़ने की विद्या सिखाई।

१३- प्रसेनजित् ने- जन्म लेते शिशुओं के शरीर पर होने वाले जेर रूपी मल के शोधन की बात बताई। तथा शत्रुओं से जीतना सिखाया।

१४- नाभिराज कुलकर (तीर्थंकर ऋषभदेव के पिता) ने शिशुओं की नाभि

के नाल को काटने की विधि बताई। बादलों के आकाश में घुमड़ने पर भय तथा आश्चर्य न करने का उपदेश दिया।

अथ नाभिराजनृपतेर्मरुदेव्यां व्यजनि नन्दनो वृषभः।
तीर्थकृतामाद्योऽसौ प्रवर्त्य भरते भृशं तीर्थम् ॥२०॥
निर्वाणमवाप ततः पञ्चाशल्लक्षकोटिमितिवार्द्धिः।
यावदविच्छिन्नतया समागतं तत् श्रुतं सकलम् ॥२१॥

अन्वयार्थ–(अथ) तदनन्तर (नाभिराजनृपते) राजा नाभिराज से (मरुदेव्यां) मरुदेवी में (वृषभः नन्दनः) वृषभ नामक आनन्द देने वाला पुत्र (व्यजनि) उत्पन्न हुआ। (असौ) वह (तीर्थकृतां) तीर्थङ्करों में (आद्यः) पहला था उसने (भरते) भरत क्षेत्र में (भृशं) अत्यधिकता (तीर्थं) धर्म तीर्थ को (प्रवर्त्य) चलाकर (निर्वाणं) मुक्ति को (आप) प्राप्त किया (ततः) उस समय से (पञ्चाशल्लक्षकोटिमितिवार्द्धिः) पचास लाख करोड़ सागर (यावत्) तक (तत्) वह (सकलं) सम्पूर्ण (श्रुतं) द्वादशाङ्ग वाणी रूप श्रुत-आगम (अविच्छिन्नतया) अविरल रूप से (समागतं) चलता रहा।

अर्थ– तदनन्तर अन्तिम कुलकर राजा नाभिराज और मरुदेवी नाम की रानी से आनन्द देने वाला ऋषभ नामक पुत्र हुआ। वह तीर्थंकरों में पहला था। उसने इस भरत क्षेत्र में अत्यधिक रूप में समीचीन धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कर निर्वाण को प्राप्त किया। उसके बाद पचास लाख करोड़ सागर पर्यंत वह श्रुत (तीर्थंकर की वाणी से उद्‌भूत श्रुतज्ञान) अविच्छिन्न रूप से चलता रहा।

जातस्ततोऽजितजिनः शिष्येभ्यः सोऽपि सम्यगुपदिश्य।
तत् श्रुतमखिलं प्रापन्निर्वाणमनुत्तरं तद्वत् ॥२२॥

अन्वयार्थ– (ततः) तदन्तर (अजितजिनः) द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ जिनेन्द्र (जातः) उत्पन्न हुए। (सोऽपि) वह भी (शिष्येभ्यः) अपने शिष्यों के लिए (तत्) वह (सकलं) सम्पूर्ण (श्रुतं) (आदि जिनेन्द्र से परम्परा रूप में चला आया हुआ) आगम रूप श्रुतज्ञान (सम्यग्) भली प्रकार (उपदिश्य) उपदेश देकर/बताकर (तद्वत्) उसी प्रकार, आदिनाथ भगवान् की तरह, (अनुत्तर) उपमा रहित-श्रेष्ठ (निर्वाणं) सिद्धिको (प्राप्त) प्राप्त हुए।

अर्थ–तदन्तर आदिनाथ श्री वृषभ जिनेन्द्र के पश्चात् अजित नाथ द्वितीय

तीर्थंकर उत्पन्न हुए उन्होंने भी जैसा वृषभ जिनेन्द्र ने तत्वोपदेश किया था वैसा ही सम्पूर्ण आगम-श्रुतरूप-तत्वोपदेश अपने शिष्यों को सम्यक् प्रकार देकर उन्हीं वृषभ जिनेन्द्र की भाँति अनुपम निर्वाण की प्राप्ति की।

एवमजितादिचन्द्रप्रभान्ततीर्थेशिनामतिक्रान्ता।
सागरकोटीनां त्रिंशक्रमाद्दशभिरथ नवभिः ॥२३॥
लक्षैस्तथा नवत्या नवभिश्च सहस्रकैः शतैर्नवभिः।
शम्भवमुख्यात् श्रुतमापन्नमत्या च पुष्पदन्तान्तात् ॥२४॥

अन्वयार्थ– (एवं) इस प्रकार (अजितादिचन्द्रप्रभान्ततीर्थेशिनां) अजितनाथ तीर्थंकर आदि में हैं जिनके ऐसे चंद्रप्रभ आठवें तीर्थंकर पर्यन्त तीर्थंकरों के (सागर कोटीनां त्रिंशक्रमात् दशभिः अथ नवभिः लक्षैः अतिक्रान्ता) द्वितीय तीर्थङ्कर की परम्परा में तीस लाख करोड़, तृतीय संभवनाथ के परम्परा में दश लाख करोड़ सागर, अभिनन्दनाथ की परम्परा में नौ लाख करोड़ व्यतीत होने पर, (नवत्या नवभि सहस्रकैः नवभि शतैः अतिक्रान्ते) सुमति नाथ की परम्परा में नब्बे हजार करोड़, पद्मप्रभ भगवान् की परम्परा में नौ हजार करोड़, सुपार्श्वनाथ भगवान् की परम्परा में नौ सौ करोड़ सागर समय बीतने पर चन्द्रप्रभ हुए। चन्द्रप्रभ भगवान् की परम्परा में नब्बे करोड़ सागर व्यतीत होने पर पुष्पदन्त ९वें तीर्थङ्कर हुए। (च) और (श्रुतमापन्नमत्या) आगम से प्राप्त ज्ञान से जाना जाता है कि-(शम्भवमुख्यात् पुष्प-दन्तात्) संभवनाथ भगवान् से लेकर पुष्पदन्त तक श्रुतपरम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती रही।

अर्थ– इस प्रकार अजिनाथ भगवान् द्वितीय तीर्थंकर से चन्द्र प्रभ भगवान आठवें तीर्थंकर तक तीस लाख करोड़ सागर, दश लाख करोड़ सागर, नौ लाख करोड़ सागर, नब्बे हजार करोड़ सागर, नौ हजार करोड़ सागर, नौ सौ करोड़ सागर, नब्बे करोड़ सागर, समय व्यतीत हो जाने पर पुष्पदन्त भगवान नौवें तीर्थंकर तक यह श्रुत निरन्तर चला।

प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ ऋषभदेव के पश्चात् पचास लाख करोड़ सागर व्यतीत होने पर द्वितीय अजितनाथ तीर्थंकर हुए।

अजित नाथ तीर्थंकर के पश्चात् तीस लाख करोड़ सागर व्यतीत होने पर सम्भवनाथ हुए।

उनसे दश लाख करोड़ सागर समय बीतने पर अभिनन्दन नाथ हुए।

उनसे नौ लाख करोड़ सागर समय बीतने पर सुमतिनाथ पाँचवें तीर्थंकर हुए।

उनसे नब्बे हजार करोड़ सागर समय बीतने पर पद्मप्रभ छठे तीर्थंकर हुए।

उनसे नौ हजार करोड़ सागर समय बीतने पर सातवें सुपार्श्व नाथ तीर्थंकर हुए।

सुपार्श्व नाथ तीर्थंकर से नौ सौ करोड़ सागर समय बीतने पर चन्द्रप्रभ आठवें तीर्थंकर हुए।

चन्द्रप्रभ से नब्बे करोड़ सागर समय बीतने पर पुष्पदन्त नौवें तीर्थंकर हुए।

सम्भवनाथ तीर्थंकर से पुष्पदन्त नवम तीर्थंकर तक यह श्रुतज्ञान अनवरत रहा।

अथ पुष्पदन्ततीर्थे नववारिधिकोटिगणनया कलिते।
पल्योपमतुर्यांशे शेषे तत् श्रुतमवाप विच्छेदम् ॥२५॥

अन्वयार्थ– (अथ) तदनन्तर (नववारिधि कोटिगणनया कलिते) नौ करोड़ सागर प्रमाण गणना से युक्त, पुष्पदन्त भगवान् के (तीर्थे) तीर्थ में (पल्योपम तुर्यांशे शेषे) पल्योपम के चतुर्थांश के शेष रहने पर (तत्) वह (श्रुतं) भगवान् की वाणी रूप श्रुतज्ञान (विच्छेदं) समाप्ति को (अवाप) प्राप्त हो गया।

अर्थ–तत्पश्चात् नौ करोड़ सागर प्रमाण गणना से युक्त पुष्पदन्त भगवान् के तीर्थ में पल्योपम के चतुर्थ भाग शेष रहने पर वह भगवान् की दिव्यध्वनि द्वारा बताया गया श्रुतज्ञान विच्छेद को प्राप्त हो गया

पल्यचतुर्भागमिते काले तीर्थे ततः समुत्पन्नः।
शीतलजिनः स पुनराविष्कृतवाँस्तत् श्रुतविशेषम् ॥२६॥

अन्वयार्थ–(पल्यचतुर्भागमिते) पल्य के चौथाई भाग प्रमाण (काले) काल में (तीर्थे) तीर्थ के विच्छेद होने पर (ततः) तदनन्तर (पुनः) फिर (शीतलजिनः) शीतलनाथ दशवें तीर्थंकर (समुत्पन्नः) उत्पन्न हुए (सः) उन्होंने (तत्) वह पूर्व तीर्थंकरों द्वारा प्रणीत (श्रुत विशेषम्) श्रुतज्ञान (पुनः) फिर से (आविष्कृतवान्) प्रकट किया।

अर्थ–पल्य के चतुर्थ भाग परिमित काल तक तीर्थ विच्छेद रहने पर श्री शीतलनाथ दशवें तीर्थंकर हुए उन्होंने उस श्रुत को (जिनेन्द्र वाणी में प्रकट श्रुतागम रूप धर्म को) फिर से अपनी दिव्यध्वनि द्वारा प्रकट किया।

शीतलतीर्थे सागरशतेन षट्षष्ठिलक्षमितवर्षैः।
षड्विंशत्या वर्षसहस्रैर्न्यूनैकवार्द्धिकोटिमिते ॥२७॥
पल्यार्धमात्रकाले शेषे तत्पुनरजन्यविच्छिन्नम्।
मितवति गतवति काले ततोऽभवत्तीर्थकृच्छ्रेयान् ॥२८॥

अन्वयार्थ– (शीतल तीर्थे) शीतलनाथ दशवें तीर्थंकर के तीर्थ के (सागर शतेन) सौ सागर (षट्षष्ठि लक्ष मितवर्षैः) छ्यासठ लाख (षड्विंशत्या) छब्बीस (वर्ष सहस्रै) हजार वर्ष (न्यूनैक वार्धिककोटिमिते) कम एक करोड़ सागर परिमित अन्तराल में (पल्यार्ध मात्र काले मितवति शेषे काले गतवति) पल्य के आधे प्रमाण शेष काल के बीतने पर (तत्) शीतलनाथ भगवान द्वारा उपदिष्ट (तीर्थ) धर्म अविच्छिन्न रहा। हाँ आधे पल्य की वह धर्म परम्परा टूट गयी, तब (श्रेयान् तीर्थकृत्) श्रेयांस नाथ ११वें तीर्थंकर (अभवत्) हुए।

अर्थ–शीतलनाथ दशवें तीर्थंकर के तीर्थ के जब सौ सागर छ्यासठ लाख, छब्बीस हजार वर्ष कम एक करोड़ सागर प्रमाण अन्तराल में जब आधा पल्य तक धर्म परम्परा अविछिन्न रही तब श्री श्रेयांसनाथ ग्यारहवें तीर्थंकर उत्पन्न हुए। अर्थात् शीतलनाथ भगवान द्वारा प्रतिपादित धर्म परम्परा सौ सागर छ्यासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक करोड़ सागर तक अविच्छिन्न चली पर अन्त में आधा पल्य तक टूटी रही अनन्तर ग्यारहवें श्रेयांसनाथ तीर्थंकर हुए।

श्रेयस्तीर्थमपि चतुष्पञ्चाशत्सागरोपमप्रमिते।
पल्यत्रिचतुर्भागे शेषे तत्पुनरवापान्तम् ॥२९॥

अन्वयार्थ– (तत्) वह (श्रेयस्तीर्थमपि) श्रेयांसनाथ ग्यारहवें तीर्थंकर द्वारा समुपदिष्ट तीर्थ/धर्म (अपि) भी, (चतुपञ्चाशत्सागरोपम प्रमिते) चौवन सागर प्रमाण काल में (पल्यत्रिचतुर्भागे) पल्य के ३/४ भाग के शेष रहने पर (अन्तम्) समाप्ति को (अवाप) प्राप्त हो गया।

अर्थ–वह श्रेयांसनाथ ग्यारहवें तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित श्रुत रूप तीर्थ (धर्म)

चौवन सागर प्रमाण काल में पल्य का ३/४ भाग शेष रहने पर समाप्ति को प्राप्त हो गया।

पल्यत्रिचतुर्भाग प्रमिते काले गते ततो जातः ।

श्रीवासुपूज्यभगवान् सोऽप्याविष्कृत्य तन्मुक्तः ॥३०॥

अन्वयार्थ– (ततो) उसके बाद (पल्यत्रिचतुर्भागे प्रमिते काले गते) पल्य का ३/४ भाग बीतने पर (श्रीवासुपूज्यभगवान्) श्री वासुपूज्य भगवान् (जातः) हुए (सःअपि) वे भी (आविष्कृत्य) धर्मश्रुत को प्रकट करके (मुक्तः जातः) मुक्त हुए।

अर्थ–ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ के बाद पल्य का ३/४ भाग व्यतीत हो जाने पर बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य हुए। इन्होंने भी धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करके मोक्ष प्राप्त किया।

एवं वसुपूज्यात्मजविमलजिनानन्तधर्मतीर्थेषु ।

त्रिंशत्नवकचतुष्कं त्रिपल्यपादोनितत्रिकैर्वार्धीनाम् ॥३१॥

प्रमितेषु पल्यपल्यत्रिपादपल्यार्धपल्यपल्यांशे ।

शेषे शेषं तत् श्रुतमनुक्रमादाप विच्छेदम् ॥३२॥

अन्वयार्थ– (एवं) इस प्रकार (वसुपूज्यात्मजविमल जिनानन्त धर्म तीर्थेषु) वसुपूज्यात्मज वासुपूज्य भगवान, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ के तीर्थों में (वार्धीनां) सागरों के क्रमशः (त्रिपल्यपादोनिमितित्रिकै) पल्य के तीन भाग बीत जाने से युक्त (त्रिंशत्, नवकं, चतुष्कं) तीस, नव तथा चार (प्रमितेषु) प्रमाण होने पर (पल्य-पल्य त्रिपाद पल्यात् अर्ध पल्य पल्यांशे) पल्य के तीन भाग प्रमाण व्यतीत हो जाने पर चतुर्थांश के लिये (शेषं) शेष (तत् श्रुतम्) वह श्रुतरूप धर्म (अनुक्रमात्) क्रम से (विच्छेदं आदाप) विच्छेद को प्राप्त हो गया।

अर्थ- भगवान वासुपूज्य जो कि नृपति वसुपूज्य के आत्मज थे के तीर्थ में तीस सागर समय व्यतीत होने पर पल्य के अन्तिम भाग में धर्म का विच्छेद हो गया।

विमलनाथ भगवान के तीर्थ में नव सागर पौन पल्य समय व्यतीत होने पर पल्य के चौथे भाग तक के लिये धर्म का विच्छेद हो गया।

अनन्त नाथ भगवान के तीर्थ में चार सागर के अन्तिम पल्य के आधे भाग में धर्म का विच्छेद हो गया।

धर्मनाथ भगवान के बाद पौन पल्य कम तीन सागर व्यतीत हो जाने पर पल्य के चतुर्थांश तक को धर्म का विच्छेद हो गया।

अथ धर्मतीर्थसन्तानान्तरकालस्य सत्यपर्यन्ते।
उत्पद्य शान्तिनाथस्तत्प्रकटीकृत्य मुक्तिमगात् ॥३३॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (धर्म तीर्थ सन्तानान्तर कालस्य) धर्मनाथ तीर्थंकर की परम्परा के अनन्तर उस तीर्थ के पौन पल्य कम तीन सागर समय व्यतीत होने पर (शान्तिनाथः) शान्तिनाथ भगवान (उत्पद्य) उत्पन्न होकर (तत्) उस धर्म श्रुत को (प्रकटीकृत्य) प्रकट करके (मुक्ति) मोक्ष को (अगात्) चले गये।

अर्थ-इसके अनन्तर धर्मनाथ पन्द्रहवें तीर्थंकर की धर्म परम्परा के समाप्त होने पर श्री शान्तिनाथ सोलहवें तीर्थंकर ने जन्म लेकर उस धर्म को प्रकट करके मुक्ति को प्राप्त किया।

शान्त्यादिपार्श्वपश्चिमतीर्थंकराणां च तीर्थसन्ताने।
पल्यार्धवर्षकोटीसहस्रोनितपल्यपादाभ्याम् ॥३४॥

कोटिसहस्रेण चतुःपञ्चाशद्गुणितसहस्रेण।
षड्भिश्च शतसहस्रैर्लक्षाभि पञ्चभिश्च तथा ॥३५॥

त्र्यधिकाशीतिसहस्रैर्युतार्धाष्टमशतैश्च पञ्चाशत्।
सहितशतद्वितयेन च वर्षाणां सम्मिते क्रमशः ॥३६॥

चतुरमलबोधसम्पत्प्रगल्भमतियतिजनैरविच्छिन्नैः।
न क्वचिदप्ययच्छेदमापत्तत् श्रुतमुदात्तार्थम् ॥३७॥

अन्वयार्थ- (शान्त्यादि पार्श्व पश्चिम तीर्थंकराणां) शान्तिनाथ हैं आदि में जिनके तथा पार्श्वनाथ के पश्चिम श्री वर्धमान् तीर्थंकरों के (तीर्थ सन्ताने) तीर्थ परम्परा में (पल्यार्ध वर्ष कोटी सहस्रोनित पल्यपादाभ्याम्) पल्य के आधा बीतने पर, एक हजार करोड़ वर्ष कम पल्य के चतुर्थांश बीतने पर, (कोटि सहस्रेण) एक हजार करोड़ बीतने पर (चतुः पञ्चाशत् गुणित शत सहस्रेण) चौवन गुणित

एक लाख अर्थात् चौवन लाख वर्ष व्यतीत होने पर (षडभिश्च शतसहस्रै) छह लाख वर्ष व्यतीत होने पर (लक्षाभिपञ्चभि च) पाँच लाख वर्ष व्यतीत होने पर (त्र्यधिकाशीति सहस्रैर्युतार्धाष्टमशतैश्च त्र्यपञ्चाशत्) सात सौ पचास अधिक तेरासी हजार वर्ष व्यतीत होने पर तथा (सहित द्वितयेन) दो सौ वर्षों के क्रमशः (सम्मिते) व्यतीत होने पर (उदात्तार्थ) उदात्त अर्थवाला वह श्रुत (धर्म श्रुत) (चतुरमल-बोध-सम्पत-प्रगल्भं-मतियतिजनैः) चार निर्मल ज्ञानों की सम्पदा से प्रगल्भ (प्रकृष्ट) बुद्धि वाले यति जनों से (अविच्छिन्ने) अत्रुटित (क्वचिदपि) कहीं भी (अवच्छेदं) भंगता को (न आदत्) प्राप्त नहीं हुआ।

अर्थ–भगवान् श्री शान्तिनाथ की धर्म परम्परा के आधा पल्य बीतने पर कुन्थुनाथ भगवान हुए।

भगवान कुन्थुनाथ की धर्म परम्परा के एक हजार करोड़ वर्ष कम पल्य का चौथाई भाग व्यतीत होने पर अरहनाथ १८वें तीर्थंकर हुए।

अरहनाथ तीर्थंकर की धर्म परम्परा के जब एक हजार करोड़ वर्ष व्यतीत हो गये तब मल्लिनाथ उन्नीसवें तीर्थंकर हुए।

मल्लिनाथ भगवान की तीर्थ परम्परा के चौवन लाख वर्ष व्यतीत होने पर भगवान मुनिसुव्रतनाथ बीसवें तीर्थंकर हुए।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ के धर्मतीर्थ के छह लाख वर्ष व्यतीत होने पर भगवान श्री नमिनाथ इक्कीसवें तीर्थंकर हुए।

भगवान नमिनाथ के तीर्थ के पाँच लाख वर्ष व्यतीत होने पर भगवान नेमिनाथ हुए।

नेमिनाथ के तीर्थ के तेरासी हजार सात सौ पचास वर्ष व्यतीत होने पर भगवान पार्श्वनाथ हुए।

भगवान् पार्श्वनाथ के दो सौ पचास वर्ष व्यतीत होने पर भगवान् महावीर अन्तिम तीर्थंकर हुए।

चार निर्मल ज्ञानों की सम्पदा से प्रकृष्ट बुद्धि वाले परम्परा से अविच्छिन्न यति जनों द्वारा वह उदात्त अर्थ वाला श्रुत कहीं भी विच्छेद को प्राप्त नहीं हुआ।

अजिताद्यास्तीर्थकरा वृषभादिजिनेन्द्रतीर्थकालस्य।
अन्तर्वर्त्यायुष्का जाता इत्यत्र विज्ञेयाः ॥३८॥

अन्वयार्थ– (वृषभादि जिनेन्द्र तीर्थकालस्य) वृषभ आदि जिनेन्द्रों के तीर्थ के समय के (अजिताद्यास्तीर्थकराः) अजित आदि जिनेन्द्र (अन्तर्वर्त्यायुष्का) उसी अन्तवर्ती आयु वाले (जाताः) उत्पन्न हैं (इति) ऐसा (विज्ञेया) जानना चाहिए।

अर्थ–श्री वृषभदेव आदि तीर्थङ्करों के तीर्थ काल में अजित आदि तीर्थङ्करों की आयु भी उसी में सम्मिलित है यथा भगवान् वृषभनाथ तीर्थङ्कर का जो तीर्थ काल बताया है उसमें अजितनाथ भगवान् की आयु भी सम्मिलित है। अजिनाथ भगवान के तीर्थकाल में सम्भवनाथ भगवान् की आयु भी सम्मिलित है। इत्यादि पहले-पहले तीर्थंकर में उनके बाद के तीर्थंकर की आयु भी सम्मिलित है।

अथ पार्श्वनाथतीर्थस्यान्ते श्रीवर्धमानामाऽभूत्।
प्रियकारिण्यां सिद्धार्थभूपतेरन्त्यतीर्थकरः ॥३९॥

अन्वयार्थ– (अथ पार्श्वनाथ तीर्थस्यान्ते) तदनन्तर पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थंकर के अनन्तर (सिद्धार्थ भूपते) सिद्धार्थ राजा की (प्रियकारिण्यां) प्रियकारिणी से (श्री वर्द्धनान नामा) श्री वर्द्धमान नाम के (अन्त्यतीर्थंकरः) अन्तिम तीर्थंकर (अभूत्) हुए।

अर्थ–इसके अनन्तर तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान् के पश्चात् वैशाली के क्षत्रिय-कुण्ड के शासक राजा सिद्धार्थ की रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) के गर्भ से श्री वर्द्धमान नामक अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर हुए। इनका श्री वर्द्धमान नाम इसलिये पड़ा था कि इनके जन्म से सर्वत्र श्री की वृद्धि हुई थी। महाराज सिद्धार्थ के महलों में ही नहीं वैशाली के प्रान्तर भागों में भी सर्वत्र सुख समृद्धि छा गयी थी।

त्रिंशद्वर्षेषु कुमार एव विगतेष्वसौ प्रवव्राज।
द्वादशभिर्वर्षाभिः प्रापद्वै केवलं तपः कुर्वन् ॥४०॥

अन्वयार्थ– (असौ सिद्धार्थ तनय) श्री वर्द्धमान (कुमार एव) कुमार काल में ही (त्रिंशद्वर्षेषु) तीस वर्षों के (विगतेषु) व्यतीत होने पर (प्रवव्राज) दीक्षित हुए- घर छोड़ कर दीक्षा हेतु वन को चले गये। (द्वादशभिः वर्षाभिः)- लगातार बारह वर्षों तक (तपः कुर्वन्) तप करते हुए (वै) निश्चय से (केवलं) केवलज्ञान को (प्राप्त) प्राप्त हुए।

अर्थ– वह सिद्धार्थ पुत्र श्री वर्द्धमान कुमार तीस वर्षों तक कुमार काल व्यतीत कर (अविवाहित रहकर) दीक्षित हुए पश्चात् बारह वर्षों तक कठिन तपश्चरण करते हुए (३०+१२=४२) ब्यालीस वर्ष की अवस्था में केवल ज्ञान को प्राप्त हुए।

उदिले केयलबोधे धनदः शक्राज्ञया चकार सभाम्।
समयश्रुतिनामधेयां तस्य स्यादखिललोकगुरोः ॥४१॥

अन्वयार्थ– (केवल बोधे) केवलज्ञान के (उदिते) उदित होने पर (धनदः) कुबेर ने (शक्राज्ञया) इन्द्र की आज्ञा से (समवसृति नामधेया) समवशरण नाम की (सभा) सभा (तस्य अखिल लोक गुरोः) उन सम्पूर्ण लोक के गुरु की (चकार) बनायी।

अर्थ–श्री वीरनाथ भगवान् जो तीनों लोकों के गुरु थे, को केवलज्ञान प्रगट होने पर, इन्द्र की आज्ञा से, कुबेर ने समवशरण नाम की सभा का निर्माण किया।

उस सभा में बिलकुल बराबरी से बैठने के लिये मुनियों, स्वर्ग की देवियों, आर्यिकाओं, ज्योतिषी देवाङ्गनाओं, भवनवासी देवियों, व्यन्तर देवियों, भवनवासी देवों, व्यन्तर देवों, ज्योतिषी देवों, कल्पवासी देवों, मनुष्यों और पशुओं को बैठने के वृत्ताकार रूप से बारह प्रकोष्ठ थे। चारों दिशाओं से आने के लिये चार प्रवेश द्वार थे।

सुरनरमुनिवृन्दारकवृन्देष्वपि समुदितेषु तीर्थकृतः।
षट्षष्टिरहानि न निर्जगाम दिव्यध्वनिस्तस्य ॥४२॥

अन्वयार्थ– (सुरनरमुनिवृन्दारकवृन्देषु) भवन, व्यंतर, ज्योतिषी देवों, मुनियों एवं कल्पवासी देवों के एवं अन्य श्रोता समूह के (समुदितेषु) इकट्ठे होने पर (अपि) भी (तस्य तीर्थकृत) उन कैवल्य प्राप्त तीर्थंकर भगवान् की (दिव्यध्वनिः) दिव्यवाणी (निरक्षरी ओंकारमयी) (षट्षष्टिः) छियासठ (अहानि) दिन तक(न निर्जगाम) नहीं निकली (प्रकट नहीं हुई)।

अर्थ–देव, मनुष्य, मुनि आदि समस्त-भव्य उपदेशामृत पिपासुओं के उत्सुकतापूर्वक उस समवशरण सभा में उपस्थित रहने पर भी, उन तीर्थंकर भगवान् महावीर की छियासठ दिन तक दिव्य ध्वनि नहीं खिरी।

दिव्यध्वनेरनिर्गमकारणमवगम्य गणधराभावम् ।
आनेतुमगात्तमतः सुत्रामा गौतमग्रामम् ॥४३॥

अन्वयार्थ– (सुत्रामा) इन्द्र (गणधराभावम्) गणधर के अभाव को (दिव्यध्वनेरनिर्गमकारणं) दिव्यध्वनि के नहीं खिरने का कारण (अवगम्य) जानकर (अतः) वहाँ से समवशरण सभा से (तम्) उस गणधर को (आनेतु) लाने के लिये (गौतम ग्रामम्) गौतम नामक ग्राम को (अगात्) गया।

अर्थ– इन्द्र ने गणधर के अभाव को ही भगवान् की वाणी नहीं खिरने का कारण जानकर इस समवशरण सभा से उस गणधर को लाने के लिये गौतम ग्राम गया।

तत्र स गत्वा ब्राह्मणशालायामिन्द्रभूतिनामानम् ।
छात्रशतपञ्चकेभ्यो व्याख्यानं विदधतं विप्रम् ॥४४॥
गौतमगोत्रं विद्यामदगर्वितमखिलवेदवेदाङ्ग ।
प्रतिबुद्धतत्त्वमवलोक्य कवलिकाछात्रवेषेण ॥४५॥
तद्व्याख्यानं शृण्वन्नेकोद्देशे द्विजन्मशालायाः ।
स्थित्वा ततो भवद्भिः प्रतिबुद्धं तत्त्वमिति तस्य ॥४६॥
छात्रेभ्यः प्रतिपादनसमयेऽसौ नासिकाग्रभङ्गेन ।
मुहुरत्यरुचिं प्रकटीकुर्वन्नुपलक्षितश्छात्रैः ॥४७॥

अन्वयार्थ– (तत्र) उस गौतम ग्राम में, (गत्वा) जाकर (ब्राह्मण शालयां) एक ब्राह्मण शाला में (व्याख्यानं) उपदेश को (विदधतं) देने वाले (गौतम गोत्रं) गौतम इस गौत्र वाले तथा (विद्यामद गर्वितं) विद्या के गर्व से गर्वित (अखिल वेद-वेदाङ्ग प्रतिबुद्ध तत्त्वं) सम्पूर्ण वेद वेदाङ्गों के तत्व को जानने वाले (इन्द्रभूति) इंद्रभूति नाम के (विप्रं) ब्राह्मण को (अवलोक्य) देखकर (कवलिका छात्र वेषेण) लघुग्रास मात्र भोजी छात्र के वेष द्वारा (द्विजन्मशालायाः) उस ब्राह्मण शाला के (एकोद्देशे) एक प्रदेश में/एक ओर (स्थित्वा) खड़े होकर (तद् व्याख्यानं) उस इन्द्रभूति आचार्य के व्याख्यान को (शृण्वन्) सुनते हुए (ततः) उन आचार्य से आप लोगों द्वारा (तत्त्वं) तत्त्व को (प्रतिबुद्धं) जाना इति ऐसा पूछने पर (छात्रेभ्यः) छात्रों से (प्रतिपादन समये) बताने के समय (असौ) उस इन्द्र ने (नासिकाग्र)

नासिका के अग्रभागों के (भङ्गेन) विकार द्वारा/नथुने फुलाकर (मुहुः) बार-बार (अरुचिं) अरुचि को (प्रकटी कुर्वन्) प्रकट करते हुए (छात्रैः) छात्रों द्वारा (उपलक्षित) देख लिया गया।

अर्थ–उस गौतम ग्राम की ब्राह्मण शाला में जाकर पाँच सौ छात्रों को व्याख्यान देने वाले तथा अपनी विद्वत्ता के मद से मदोन्मत्त सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्गों के तत्त्व को समझने वाले गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण को देखकर अल्पतम ग्रासों में भोजन लेने वाले छात्र के वेष में उस ब्राह्मण शाला के एक प्रान्त भाग में (कोने में) खड़े होकर उसका व्याख्यान (समझाने की विधि) को सुनकर तुमने उनसे सही अर्थ जाना इस प्रकार पूछने पर छात्रों से प्रतिपादन करने के समय नथुने फुलाकर बार-बार अरुचि प्रकट करते हुए छात्रों के द्वारा उसकी उपेक्षा वृत्ति जान ली गई।

तेऽपि ततस्तच्चेष्टितमीदृशमावेदयन् स्वकीयगुरोः।
सोऽपि ततो द्विजमुख्यस्तमपूर्वं छात्रमित्यवदत् ॥४८॥

अन्वयार्थ– (तेऽपि) वे छात्र भी (ततः) तदन्तर (ईदृशं) इस प्रकार (तच्चेष्टितं) उसकी चेष्टा को (स्वकीय गुरोः) अपने गुरु को (आवेदयन्) निवेदन करने लगे। (सः) वह (द्विजमुख्यः) ब्राह्मणों में प्रमुख आचार्य भी (तम्) उस (अपूर्वं) अनोखे/नवीन (छात्रं) छात्र को (इति) इस प्रकार (अवदत्) बोले।

अर्थ–इसके पश्चात् उसकी ऐसी चेष्टा को देखकर छात्रों ने अपने गुरु से निवेदन किया। उन ब्राह्मण प्रमुख आचार्य ने भी उस नये-नये आये तथा आचार्य की व्याख्यान विधि की उपेक्षा करने वाले छात्र से इस प्रकार कहा-

शास्त्राणि करतलामलकायन्तेऽस्माकमिह समस्तानि।
अपरेऽपि वादिनोऽस्माज्जायन्ते नष्टदुष्टमदाः ॥४९॥

अन्वयार्थ– (इह) यहाँ- इस भरत खण्ड में (अस्माकं) मेरे लिये (समस्तानि) सम्पूर्ण (शास्त्राणि) शास्त्र-चारों वेद, छह वेदाङ्ग, सभी उपनिषद्, अठारहों पुराण, व्याकरण, तर्क, दर्शन, कोष, इतिहास, नीति शास्त्र आदि (करतलामलकायन्ते) हथेली पर रखे हुए आमलक/ आंवले की भाँति प्रत्यक्ष हैं। (अपरे) दूसरे (अन्यान्य वादिनं) शास्त्रार्थी गण भी (अस्मात्) मुझसे (नष्टदुष्ट मदाः) नष्ट हो गया है- दुष्ट अहंकार जिनका- ऐसे हो गये हैं।

अर्थ– वह उस ब्राह्मण शाला का प्रमुख आचार्य इन्द्रभूति कहता है कि इस भारत खण्ड में सम्पूर्ण शास्त्र वेद-वेदान्त, उपनिषद्, पुराण, मीमांसा, दर्शन, व्याकरण, तर्क, कोष, इतिहासादि मुझे हाथ पर रखे हुए आँवले की भाँति स्पष्ट ज्ञात हैं, दूसरे शास्त्रार्थी विद्वानों की भी विद्वत्ता का अहंकार मैंने नष्ट कर दिया है।

तत्केन हेतुना तद्व्याख्यानं नैव रोचते तुभ्यम्।
कथयेति ततस्तस्मै प्रतिवचनमुवाच सोऽपीत्थम् ॥५०॥

अन्वयार्थ– (तत् केनं हेतुना) तो किस कारण से (तद् व्याख्यानं) वह मेरा उपदेश (तुभ्यं) तुम्हारे लिये (नैव) नहीं, बिलकुल नहीं (रोचते) रुचता है (कथय इति) यह बताइए (ततः) अनन्तर (सोऽपि) वह छात्रवेष धारी इन्द्र भी (तस्मै) उस इन्द्रभूति गौतम आचार्य को (इत्थं) इस प्रकार (प्रतिवचनं) उत्तर रूप में (उवाच) बोला।

अर्थ–आगे आचार्य इन्द्रभूति गौतम कहते हैं कि जब मैं समस्त शास्त्रों का ज्ञाता तथा प्रवादियों के विद्यामद को गला (नष्टकर) देने वाला हूँ तो तुम्हें किस कारण से मेरा वह व्याख्यान (कथन) नहीं रुचता है- यह बतलाइये। तब छात्रवेषधारी वह इन्द्र इस प्रकार उत्तर देता है-

यदि सर्वशास्त्रतत्त्वं जानन्ति भवन्त एव तदमुष्याः।
आर्यायाः कथयन्त्वर्थमिति पठति तत्काव्यम् ॥५१॥

अन्वयार्थ– (यदि) अगर (भवन्तः) आप (सर्वशास्त्र तत्त्वं) सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्व को (जानन्ति) जानते हैं (तत्) तो (अमुष्या) इस (आर्यायाः) इस आर्या छन्द में रचित पद्य का एक ही अर्थ (कथयन्तु) कहिये। (इति) इस प्रकार कहकर (तत्काव्यं) उस कविता रूप रचना को (पठति) वह ब्राह्मण छात्रवेशधारी इन्द्र पढ़ता है।

अर्थ– अगर आप समस्त शास्त्रों के मर्म को जानते हैं तो इस आर्या (आर्या छन्द में रचित) पद का अर्थ बतलाइये ऐसा कहकर वह उस (आर्या छन्द में रचित) पद को पढ़ता है।

षड्द्रव्यनवपदार्थत्रिकालपञ्चास्तिकायषट्कायान्।
विदुषां वरः स एव हि यो जानाति प्रमाण नयैः ॥५२॥

अन्वयार्थ– (यः) जो (प्रमाण नयैः) प्रमाण और नयों के द्वारा षड्द्रव्यनवपदार्थत्रिकालपञ्चास्तिकायषट्कायान्। (षट कायान्) छह द्रव्यों, नौ पदार्थों, तीन कालों, पाँच अस्तिकायों, छह काय के जीवों को (जानाति) भले प्रकार जानता है (स एव) वही (विदुषां वरः) विद्वानों में (ज्ञानियों में) श्रेष्ठ है।

अर्थ–जो निकट भव्यजीव, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल- इन छह द्रव्यों, नौ पदार्थों-जीव, आश्रव, बँध, संवर निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप रूप नव पदार्थों, भूत-भविष्यत् और वर्तमान इन तीन कालों, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश रूप पाँच अस्तिकायों तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस-इन छह कायों को नय-प्रमाण द्वारा भली प्रकार जानता है वही श्रेष्ठ विद्वान् अर्थात् सच्चा ज्ञानी या सम्यग्दृष्टि है।

श्रुत्वा तेनेत्युदितामश्रुतपूर्वामतीव विषमार्थाम्।
आर्यामिमां ततोऽस्याः सोऽर्थमजानन्निति तमूचे ॥५३॥

अन्वयार्थ– (तेन) उस ब्राह्मण विद्यार्थी का वेश धारण करने वाले इन्द्र द्वारा (इति) उपरिलिखित प्रकार से (उदितां) कही हुई (अश्रुतपूर्वा) पहले कभी न सुनी हुई (अतीव विषमार्थाम्) अत्यन्त विषम अर्थ वाली (इमां आर्यां) इस आर्या छन्द में विरचित पद को (श्रुत्वा) सुनकर (ततः) अनन्तर (अस्याः) इस आर्या पद के (अर्थं) अर्थ को (अजानन्) नहीं जानता हुआ (तम्) उस छात्र वेशधारी से (सः) वह इन्द्रभूति आचार्य (इति) इस प्रकार (ऊचे) कहने लगे।

अर्थ–उस ब्राह्मण विद्यार्थी का वेश धारण करने वाले इन्द्र द्वारा कही हुई कभी पहले न सुनी हुई तथा विषम (कठिन) अर्थ से भरी उस आर्या को सुनकर, उसके अर्थ को नहीं जानता हुआ वह उससे इस प्रकार बोला।

कस्यच्छात्रस्तावत्त्वं कथयेत्याह सोऽपि भट्टार्हत्।
श्रीवर्धमानभट्टारकस्य जगतीगुरोश्छात्रः ॥५४॥

अन्वयार्थ– (तावत् त्वं) तो तुम (कस्य) किसके (छात्रः) विद्यार्थी/शिष्य हो (इति कथय) ऐसा कहिये। (सः) वह (आह) बोला (भट्टार्हत्) वह योग्य शिष्य (अपि) भी (जगतीगुरो) इस जगत भर के गुरु (श्री वर्द्धमान भट्टारकस्य) पूज्य वर्द्धमान का (छात्रः) विद्यार्थी (अस्मि) हूँ।

सिद्धार्थनन्दनस्य छात्रस्त्वं चेन्महेन्द्रजालविदः।
देवागमं जनस्य प्रतिदर्शयतो वियन्मार्गे ॥५५॥

अन्वयार्थ– (त्वं चेत्) यदि तुम सिद्धार्थनन्दन वर्द्धमान के शिष्य हो तो (वियन्मार्गे) आकाशमार्ग में (जनस्य) जन समुदाय को (देवागमं) देवों के आगमन को (प्रतिदर्शयितः) दिखाने वाले (महेन्द्रजालविदः) महान् इन्द्रजाल को जानने वाले जादूगर के (छात्रः) शिष्य (असि) हो।

अर्थ–यदि तुम उन सिद्धार्थनन्दन वर्द्धमान के छात्र हो तो निश्चय ही आकाशमार्ग में देवों के आगमन द्वारा लोगों को दिखाने वाले एक बड़े जादूगर के ही शिष्य हो।

तत्तेनैव विवादं सार्धं प्रकरोमि किं त्वया कार्यम्।
त्वत्तो जयापजययोर्ममैव विद्वत्सु लघुता स्यात् ॥५६॥

अन्वयार्थ– (तत्) तो (त्वया) तुमसे (किं कार्यम्) क्या करना (तेनैव) उसी के (सार्द्धं) साथ (विवादं) शास्त्रार्थ (प्रकरोमि) करूँगा। (त्वत्तो) तुमसे (जयापजययोः) जय या पराजय में (ममैव) मेरी ही (विद्धत्सु) विद्वानों की गोष्ठी में (लघुता) छोटापन (स्यात्) सिद्ध होगा।

अर्थ–तो तुमसे क्या कहा जाय! मैं तुम्हारे गुरु उसी सिद्धार्थनन्दन वर्द्धमान कुमार से ही तुम्हारे द्वारा पढ़ी गयी आर्या पर विवाद करूँगा। तुम्हारे साथ विवाद होने पर जय-पराजय पर विद्वानों में मेरी लघुता (हलकापन) होगी। क्योंकि विद्वानों की विद्वत्ता विद्वानों से वार्तालाप में ही सुरक्षित रहती है। अल्पज्ञों के साथ विवाद से तो हलकापन प्रदर्शित होता है।

एहि व्रजाव इत्यभिधाय पुरोधाय गौतमः शक्रम्।
समवसृतिं भ्रातृभ्यामायाद्वायुवह्निभूतिभ्याम् ॥५७॥

अन्वयार्थ– (गौतमः) गौतम इन्द्रभूति आचार्य (एहि) आओ (व्रजाव) हम दोनों चलें (इत्यभिधाय) ऐसा कहकर (वायुवह्निभूतिभ्याम्) वायुभूति एवं अग्निभूति दोनों (भ्रातृभ्याम्) भाइयों के साथ (समवसृतिं) समवशरण सभा को (आयात्) गया।

अर्थ–आचार्य गौतम इन्द्रभूति उस छात्रवेशधारी इन्द्र से जिसने ''षड्द्रव्य, नवपदार्थ'' वाली 'आर्या' का अर्थ उनसे पूछा था- कहते हैं कि- 'आओ हम दोनों वहीं चलें' ऐसा कहकर उस इन्द्र को आगे करके अपने दो भाइयों-वायुभूति एवं अग्निभूति के साथ भगवान् वर्द्धमान-महावीर की समवशरण सभा की ओर जाते हैं।

दृष्ट्वा मानस्तम्भं विगलितमानोदयो द्विजन्माऽऽसीत्।
भ्रातृभ्यां सह जिनपतिमवलोक्य परीत्य तं भक्त्या ॥५८॥

नत्वा नुत्वा त्यक्त्वाऽशेषपरिग्रहमनाग्रहो दीक्षाम्।
आदायाग्रिमगणभृद्बभूव सप्तर्द्धिसम्पन्नः ॥५९॥

अन्वयार्थ– (द्विजन्मा) वह संस्कार पवित्रित जन्म वाला ब्राह्मण इन्द्रभूति (मानस्तम्भं) मानस्तम्भ को (दृष्ट्वा) देखकर (विगलित मानोदय) गल गया है मान जिसका ऐसा (भ्रातृभ्यां) दोनों वायुभूति एवं अग्निभूति भाइयों के साथ निरभिमानी (आसीत्) हुआ (जिनपतिं) भगवज्जिनेश्वर, जिनेन्द्र वर्द्धमान महावीर के (अवलोक्य) दर्शन करके (भक्त्या) भक्ति से (तं) उन्हें (परीत्य) प्रदक्षिणा देकर (नत्वा) नमस्कार कर (नुत्वा) स्तुति कर (अनाग्रह) मिथ्या आग्रह से रहित हुआ (अशेष परिग्रह) सम्पूर्ण परिग्रह को छोड़कर (दीक्षां आदाय) दीक्षा ग्रहण कर (सप्तर्द्धि सम्पन्नः) सप्त ऋद्धियों से संपन्न होकर (अग्रिम गणभृत्) प्रथम गणधर (बभूव) हुआ।

अर्थ–माता के उदर से जन्म लेने के साथ ही संस्कारों से भी पवित्र जन्म वाला वह आचार्य इन्द्रभूति अपने दोनों भाइयों-वायुभूति एवं अग्निभूति के साथ मानस्तम्भ के दर्शन से नष्ट हो गया है मान जिसका निरभिमानी अत्यन्त विनत स्वभाव वाला हुआ जिनेन्द्र वीर-वर्द्धमान के दर्शन कर भक्तिपूर्वक उनकी प्रदक्षिणा देकर, प्रणाम कर तथा स्तुति कर, परिग्रह को छोड़कर, पूर्व मिथ्याधारणाओं को तिलाञ्जलि देकर, दीक्षाग्रहण कर बुद्धि, चारण, विक्रिया, बल, औषध, रस आदि सप्त महा ऋद्धियों से संपन्न हुआ तथा भगवान् का प्रथम (मुख्य) गणधर हो गया। उसके दोनों भाई वायुभूति, अग्निभूति भी इसी तरह गणधर बन गये।

अथ भगवान् किंजीवोस्ति नास्ति वा किंगुणः कियान्कीदृक्
इत्यादिषडयुतप्रमितं तद्गणेटप्रश्नपर्यन्ते ॥६०॥
जीवोऽस्त्यनादिनिधनः शुभाशुभविभेदकर्मणां कर्ता।
सदसत्कर्मफलानां भोक्ता स्वोपात्ततनुमात्रः ॥६१॥
उपसंहरणविसर्पणधर्मं ज्ञानादिभिर्गुणैर्युक्तः।
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययलक्षणः स्वसंवेदनग्राह्यः ॥६२॥
नोकर्मकर्मपुद्गलमनादिरूपात्तकर्मसम्बन्धात्।
गृह्णन् मुञ्चन् भ्राम्यन् भवे भवे तत्क्षयान्मुक्तः ॥६३॥
इत्याद्यनेकभेदैस्तथा स जीवादिवस्तुसद्भावम्।
दिव्यध्वनिना स्फुटमिन्द्रभूतये सन्मतिरवोचत् ॥६३॥

अन्वयार्थ–(अथ) इन्द्रभूति गौतम के प्रमुख गणधर बनने पर (जीवः किं अस्ति) क्या जीव है (वा नास्ति) अथवा नहीं है (किं गुणः) अगर है तो वह किस गुणवाला है (कियान्) वह कितने प्रमाण है अथवा कितने हैं (कीदृक्) वह कैसा है (इत्यादि षडयुतप्रमितं) इत्यादि छह प्रमाण (तद्गणेटप्रश्नपर्यन्ते) उनके गणधर प्रमुख के प्रश्नों के अन्त में (जीवः अस्ति) जीव है (जीवः अनादि निधनः) अनादि अनिधन है- आदि अन्तरहित है। (शुभाशुभ विभेद कर्मणां कर्ता) शुभ और अशुभ भेदों से युक्त कर्मों का कर्ता है (सदसत्कर्मफलानां भोक्ता) अपने शुभ या अशुभ कर्मों के फल का भोगने वाला है। (स्वोपात्त तनुमात्रः) शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त शरीर के प्रमाण छोटा या बड़ा है (उपसंहरण-विसर्पण) स्वभाव वाला (ज्ञानादिभिर्गुणैर्युक्तः) ज्ञान दर्शन आदि गुणों से युक्त (ध्रौव्योत्पत्तिव्ययलक्षणः) ध्रौव्य, उत्पाद, व्यय द्रव्य लक्षण युक्त (स्वसंवेदनग्राह्यः) स्व संवेदन से ग्रहण करने योग्य (अहं प्रत्यय से ज्ञान में आनेवाला) (नोकर्मकर्मपुद्गलमनादिरूपात् तत् कर्म सम्बन्धात्) नोकर्म शरीर इन्द्रियादि, कर्म-ज्ञानावरणादि तथा रागादि रूप पुद्गलों को अनादि काल से कर्म रूप सम्बन्ध से (गृह्णन्) ग्रहण करते हुए (मुञ्चन्) उन कर्म शरीरादि को भोग लेने पर छोड़ते हुए (भवे-भवे) भव-भव में अनेक जन्मों द्वारा गतियों में घूमते हुए (तत्क्षयात्) उन कर्मों के सर्वथा क्षय से मुक्त हुआ इत्यादि (अनेक भेदैः) इस प्रकार अनेक भेदों से (जीवादि वस्तु सद्भावम्) जीव पुद्गल-धर्म-अधर्म-

अनादि-काल आदि के सद्भाव को (भगवान्) सन्मति भगवान् महावीर ने (इन्द्रभूतये) इन्द्रभूति गणधर के लिये (दिव्यध्वनिना) दिव्यध्वनि से (स्फुटम्) स्पष्ट रीति से (अवोचत्) कहा।

अर्थ–जब वह इन्द्रभूति आचार्य भगवान् के प्रमुख गणधर बन गये तब कोई स्वतंत्र जीव तत्त्व है या नहीं? अगर है तो वह किन विशेष गुणोंवाला है? वह कितना (किस आकार का) है? कैसा है? इत्यादि छह प्रकार गणधर द्वारा प्रश्न करने के बाद जीव है और वह अनादि निधन (शाश्वत) सदाकाल से सदाकाल तक है। द्रव्यतः न कभी नया उत्पन्न होता है और न कभी पूर्णतः विनष्ट होता है वह अपने शुभ या अशुभ कर्मों का कर्ता है अपने ही शुभ या अशुभ कृत कर्मों का भोक्ता है, संसार में कर्मों के कारण जैसा उसे शरीर मिला उस शरीर प्रमाण ही वह उपसंहरण-विसर्पण अर्थात् संकोच विस्तार धर्म वाला है। ज्ञान-दर्शन आदि गुणों से युक्त है। उत्पाद-व्यय ध्रौव्य वाला तथा स्वसंवेदन से ग्रहण करने योग्य है। वह अपने द्वारा उपार्जित कर्म सम्बन्ध से नोकर्म कर्म पुद्गलों को ग्रहण करने वाला, कर्म फल भोगने के बाद उन्हें छोड़ने वाला, भव-भव में घूमने वाला तथा कर्मों के पूर्ण क्षय बन्धन मुक्त हुआ इस प्रकार अनेक भेदों से जीवादि वस्तुओं के सद्भाव को भगवान् सन्मति महावीर ने अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा स्पष्ट रीति से इन्द्रभूति गौतम गणधर के लिए कहा।

भगवान् की दिव्य ध्वनि के अनुसार आचार्य नेमिचन्द्र ने अपने द्रव्य संग्रह ग्रन्थ में लिखा है-

जीवो उपओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥

श्रावणबहुलप्रतिपद्युदितेऽर्के रौद्रनामनि मुहूर्ते।
अभिजिद्गते शशांके तीर्थोत्पत्तिर्बभूव गुरोः॥६५॥

अन्वयार्थ– (श्रावणबहुल प्रतिपदि) श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (अर्के उदिते) सूर्य के उदित होने पर (रौद्र नामनि मुहूर्ते) रौद्र नाम के मुहूर्त में (शशांके अभिजिद्गते) चन्द्रमा के अभिजित् नक्षत्र पर पहुँचने पर (गुरोः) लोक के गुरु या गौतम इन्द्रभूति के गुरु महावीर वर्द्धमान भगवान् के (तीर्थोत्पत्तिः) तीर्थ/ धर्म की उत्पत्ति (बभूव) हुई।

अर्थ–श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन (वर्तमान में जो वीरशासन जयन्ती के रूप में महान पर्व माना जाता है) सूर्य का उदय होने पर रौद्र नामक मुहूर्त में चन्द्रमा के अभिजित नक्षत्र में होने पर तीनों लोकों के गुरु वर्द्धमान महावीर के धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई अर्थात् समवशरण सभा में विपुलाचल पर्वत राजगृह में उनकी प्रथम देशना हुई।

तेनेन्द्रभूतिगणिना तद्दिव्यवचोऽवबुध्य तत्त्वेन।
ग्रन्थोऽङ्गपूर्वनाम्ना प्रतिरचितो युगपदपराह्णे ॥६६॥

अन्वयार्थ– (तेन इन्द्रभूतिगणिना) उस इन्द्रभूति गणधर द्वारा (तत्त्वेन) तत्त्वतः (दद्दिव्यवचो) उन महावीर भगवान् के दिव्य वचनों को (अवबुध्य) जानकर (युगपत्) एक साथ (अपराह्ण) दिन के अन्तिम भाग में (अङ्ग पूर्व नाम्ना) अङ्ग व पूर्व नाम से (ग्रन्थः) ग्रन्थ (प्रतिरचितः) रचा।

अर्थ–उन इन्द्रभूति गणधर ने भगवान् महावीर की उस दिव्य वाणी को तत्त्वतः ज्ञात कर दिन के अपर भाग में अङ्ग पूर्व नामक आगमों की एक साथ रचना की।

प्रतिपादितं ततस्तत् श्रुतं समस्तं महात्मना तेन।
प्रथितात्मीयसधर्मणे सुधर्माभिधानाय ॥६७॥

अन्वयार्थ– (तेन महात्मना) उन महात्मा गौतम गणधर ने (ततः) तदन्तर (तत् समस्तं श्रुतं) वह समस्त श्रुत, भगवान् वीरनाथ की दिव्यवाणी रूप (सुधर्माभिधानाय) सुधर्मा नाम के (प्रथितात्मीय सधर्मणे) प्रसिद्ध अपने सहधर्मा गणधर के लिए (प्रतिपादितं) प्रतिपादित किया।

अर्थ–उन महात्मा गणधर प्रमुख गौतम इन्द्रभूति ने वह समस्त श्रुतज्ञान जो सन्मति महावीर वर्द्धमान की दिव्य वाणी से प्रसूत था वह अपने प्रसिद्ध सहधर्मी सुधर्माचार्य के लिए प्रतिपादित किया।

सोऽपि प्रतिपादितवान् जम्बूनाम्ने सधर्मणे स्वस्यै।
तेभ्यस्ततो गणिभ्योऽन्यैरपि तदधीतं मुनिवृषभैः ॥६८॥

अन्वयार्थ– (सोऽपि) उन सुधर्माचार्य नेभी (स्वस्यै) अपने (जम्बूनाम्ने) जम्बू कुमार नाम वाले (स्वधर्मणे) अपने सहधर्मी के लिए (प्रतिपादितवान्) वह

श्रुत प्रतिपादित किया। (ततः) अनन्तर (तेभ्यः गणिभ्यः) उन उन गणधरों से (अन्यैः) दूसरे (मुनिवृषभैः) मुनिश्रेष्ठों के द्वारा (तदधीतम्) वह श्रुत पढ़ा गया।

अर्थ–उन सुधर्माचार्य ने भी अपने सहधर्मी जम्बूस्वामी के लिए भी वह श्रुत प्रतिपादित किया तथा उन गणधरों से अन्य श्रेष्ठ मुनियों ने भी वीर भगवान् की दिव्य ध्वनि से प्रसृत तथा गौतम गणधर द्वारा अंग पूर्वों में ग्रथित तथा सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी से प्रतिपादित वह श्रुतज्ञान अन्य-अन्य श्रेष्ठ मुनियों द्वारा पढ़ा गया।

सन्मतिजिनस्ततोऽसावासन्नविमुक्तिभव्यसस्यानाम्।
परमानन्दं जनयन् धर्मामृतवृष्टिसेकेन ॥६९॥
त्रिंशतमिह वर्षाणां विहृत्य बहुजनपदानं जगत्पूज्यः।
सरसिजवनपरिकलिते पावापुरबहिरुद्याने ॥७०॥
वत्सरचतुष्टयेऽर्द्धत्रिमासहीने चतुर्थकालस्य।
शेषे कार्तिककृष्ण चतुर्दश्यां निर्वृतिमवाप ॥७१॥

अन्वयार्थ– (ततः) तदनन्तर (असौ) यह (जगत्पूज्यः) लोकपूज्य (सन्मति जिन) भगवान् सन्मति महावीर जिनेन्द्र (धर्मामृतवृष्टिसेकेन) धर्म रूप अमृत वर्षा के सिञ्चन से (आसन्नविमुक्ति भव्य सस्यानां) निकट भविष्य में ही जिन्हें मुक्ति की प्राप्ति होगी ऐसे भव्य जीवरूपी धान्यों को (परमानन्दं जनयन्) अत्यन्त आनन्द उत्पन्न करते हुए (इह) इस भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में (बहुजनपदानं) बहुत से जनपदों में (वर्षाणां त्रिंशतं) तीस वर्ष तक (विहृत्य) घूमकर (चतुर्थ कालस्य) चतुर्थ काल के (अर्द्ध त्रिमास हीने) साढ़े तीन मास कम (वत्सर चतुष्टये) चार वर्ष (शेषे) शेष रहने पर (सरसिज वन परिकलिते) कमल वन से युक्त (पावापुर बहिरुद्याने) पावापुर के बाहरी भाग के उद्यान में स्थित सरोवर पर से (कार्तिक कृष्ण चतुर्दश्यां) कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी (निर्वृति) निर्वाण को (आप) प्राप्त हुए।

अर्थ– तदनन्तर (गणधर प्राप्ति के अनन्तर) वह जगत्पूज्य सन्मति जिनेन्द्र धर्म रूप अमृत की वर्षा के सिञ्चन से निकट भविष्य में ही मुक्ति प्राप्त होने वाले भव्यजीवरूपी धान्यों को अत्यधिक आनन्द उत्पन्न करते हुए तीस वर्ष तक इस भरत खण्ड के आर्य प्रदेश के अनेक जनपदों में विहार करके जब चतुर्थ काल में

साढ़े तीन मास कम चार वर्ष शेष रह गये तब कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी में (रात्रि के अन्तिम प्रहर में) कमल वनों से वेष्टित पावापुर के बाहरी उद्यान में स्थित सरोवर से मुक्ति को प्राप्त हुए।

भगवत्परिनिर्वाणक्षण एवावाप केवलं गणभृत् ।
गौतमनामा सोऽपि द्वादशभिर्वत्सरैर्मुक्तः ॥७२॥

अन्वयार्थ– (भगवत्परिनिर्वाणक्षण एव) भगवान् महावीर के निर्वाण के समय ही (गणभृत्) मुनिसंघ के नायक गौतम गणधर (केवलं) केवलज्ञान को (अवाप) प्राप्त हुए (सोऽपि गौतमनामा) वह गौतम गणधर भी (द्वादशभिः वत्सरैः) बारह वर्षों में (मुक्तः) मुक्त हो गये।

अर्थ– भगवान् वीरजिन के परिनिर्वाण के समय में ही गौतम गणधर केवल ज्ञान सम्पन्न हो गये तथा वे गौतम गणधर भी बारह वर्ष में मुक्त हो गये।

निर्वाणक्षण एवासावापत्केवलं सुधर्ममुनिः ।
द्वादशवर्षाणि विहृत्य सोऽपि मुक्तिं परामाप ॥७३॥

अन्वयार्थ– (असौ) वह (सुधर्म मुनिः) सुधर्माचार्य (निर्वाणक्षण एव) श्री इन्द्रभूति गौतम गणधर के निर्वाण के क्षण में ही (केवलं) केवलज्ञान को (आपत्) प्राप्त हुए (सोऽपि) वह सुधर्माचार्य भी (द्वादश वर्षाणि) बारह वर्ष पर्यन्त (विहृत्य) विहार करके (परां मुक्तिं) उत्कृष्ट मुक्ति को (आप) प्राप्त हुए।

अर्थ–उन सुधर्मा मुनि ने गौतम इन्द्रभूति गणधर के निर्वाण क्षण में ही केवलज्ञान को प्राप्त किया तथा लगातार बारह वर्षों के विहार में धर्मामृत की वर्षा कर उत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त हुए। अर्थात् समस्त कर्मों का क्षय कर मुक्ति को प्राप्त किया।

जम्बूनामाऽपि ततस्तन्निर्वृतिसमय एव कैवल्यम् ।
प्राप्याष्टत्रिंशतमिह समा विहृत्याप निर्वाणम् ॥७४॥

अन्वयार्थ– (ततः) सुधर्माचार्य के मुक्त होने पर (जम्बूनामाऽपि) जम्बू स्वामी भी (तन्निर्वृतिसमय एव) उन सुधर्माचार्य के परिनिर्वाण के समय ही (कैवल्यं आप) केवल ज्ञान को प्राप्त कर (इह) इस भरत खण्ड के आर्य प्रदेश में (अष्टत्रिंशतं) अड़तीस (समा) वर्षों तक (विहृत्य) विहार करके (निर्वाणम्) निर्वाण को (आप) प्राप्त हुये।

अर्थ–श्री सुधर्माचार्य के मुक्त होने पर जम्बू स्वामी ने उनकी मुक्ति के समय ही केवलज्ञान को प्राप्त किया तथा केवलज्ञानी के रूप में इस भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में अड़तीस वर्षों तक लगातार विहार कर धर्मोपदेश के द्वारा भव्य जीवों का उपकार कर अष्ट कर्मों का क्षय कर मुक्ति को प्राप्त किया।

एते त्रयोऽपि मुनयोऽनुबद्धकेवलिविभूतयोऽमीषाम् ।
केवलदिवाकरोऽस्मिन्नस्तमवाप व्यतिक्रान्ते ।।७५ ।।

अन्वयार्थ– (एते त्रयोऽपि मुनयः) ये तीनों मुनि (अनुबद्ध केवलि विभूतयः आसन्) अनुबद्ध केवली की विभूत से युक्त थे (अमीषाम्) इनके (व्यतिक्रान्ते) मोक्ष चले जाने पर (अस्मिन्) इस भरत खण्ड के आर्य प्रदेश में (केवल दिवाकरः) केवलज्ञान रूप सूर्य (अस्तं अवाप) अस्त को प्राप्त हो गया।

अर्थ–ये तीनों-गौतम गणधर, सुधर्माचार्य और जम्बू स्वामी अनुबद्ध केवली की सम्पदा को प्राप्त थे। इनके मोक्ष चले जाने पर इस भरत क्षेत्र में केवलज्ञान रूपी सूर्य अस्त हो गया। इनके बाद केवलज्ञान किसी को नहीं हुआ।

जम्बूनामा मुक्तिं प्राप यदासौ तथैव विष्णुमुनिः ।
पूर्वाङ्गभेदभिन्नाशेषश्रुतपारगो जातः ।।७६ ।।

अन्वयार्थ– (यदा) जिस समय (असौ) यह (जम्बू नामा) जम्बू स्वामी (मुक्तिं) मुक्ति को (प्राप) प्राप्त हुए (तदैव) उसी समय (विष्णुमुनि) मुनि विष्णु (पूर्वाङ्गभेदभिन्नाशेष श्रुतपारंगः) पूर्व एवं अङ्गों के भेदों से युक्त सम्पूर्ण श्रुतज्ञान का पारगामी (जातः) हो गया।

अर्थ– जम्बू स्वामी मथुरा नगर के उद्यान से मोक्ष गये उनके मोक्ष जाते ही विष्णु नामक मुनिराज ग्यारह अङ्गों एवं चौदह पूर्वों में विभिन्न सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के पारगामी हो गये।

एवमनुबद्धसकलश्रुतसागरपारगामिनोऽत्रासन् ।
नन्द्यपराजितगोवर्धनाह्वया भद्रबाहुश्च ।।७७ ।।

अन्वयार्थ– (एवं) इस प्रकार (नन्द्यपराजित गोवोर्धनाह्वाः) नन्दि, अपराजित, गोवर्धन नामवाले (च) और (भद्रबाहुः) भद्रबाहु (अनुबद्ध सकल श्रुतसागर पारगामिनः) क्रमानुसार सम्पूर्ण श्रुत रूपी समुद्र के पारगामी (अत्र) यहाँ इस भरत खण्ड के आर्य क्षेत्र में (आसन) थे।

अर्थ–इस प्रकार नन्दि, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु तथा पूर्व श्लोक में कथित विष्णु सहित पाँच मुनि अनुक्रम से सम्पूर्ण श्रुत रूप सागर के पारगामी यहाँ इस भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में हुए थे।

एषां पञ्चानामपि काले वर्षशतसम्मितेऽतीते।
दशपूर्वविदोऽभूवं तत् एकादश महात्मानः ॥७८॥

अन्वयार्थ– (एषां पञ्चानाम् अपि) इन पाँचों श्रुत ज्ञानियों के (वर्षशतसम्मिते) सौ वर्ष का प्रमाण (काले) समय (अतीते) व्यतीत होने पर (दशपूर्वविदो) दशपूर्वों के ज्ञान के धारी (एकादश) ग्यारह (महात्मानः) महान् आत्मा आत्मसाधक साधु (अभूवत्) हुए।

अर्थ–इन पाँचों श्रुतज्ञानियों के सौ वर्ष प्रमाण समय व्यतीत होने पर दशपूर्व ज्ञानधारी ग्यारह महात्मा हुए। ये महात्मा ग्यारह अङ्ग और दशपूर्व धारी थे। अर्थात् इन्हें ग्यारह अंगों एवं दस पूर्व श्रुत का ज्ञान था।

तेषामाद्यो नाम्ना विशाखदत्तस्ततः क्रमेणासन्।
प्रोष्ठिलनामा क्षत्रियसंज्ञो जयनागसेनसिद्धार्थाः ॥७९॥
धृतिषेणविजयसेनौ च बुद्धिमान्गङ्गधर्मनामानौ।
एतेषां वर्षशतं त्र्यशीतियुतमजनि युगसंख्या ॥८०॥

अन्वयार्थ– (तेषां) उन ग्यारह महात्माओं में (आद्य) सबके आदि का (नाम्ना) नाम से (विशाखदत्तः आसीत्) विशाखदत्त थे (ततः क्रमेण) पश्चात् क्रम से (प्रोष्ठिलनामा) प्रोष्ठिल नामक, क्षत्रिय नामक, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजयसेन, बुद्धिमान, गङ्ग तथा धर्म नामक (आसन्) थे (एतेषां) इनकी (त्र्यशीतियुत) तेरासी सहित (वर्षशतं) सौवर्ष (युग संख्या अजिन) समय संख्या थी।

अर्थ–उन दशपूर्वधारियों में सर्वप्रथम विशाखदत्त, द्वितीय प्रोष्ठिल फिर क्रमशः क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजयसेन, बुद्धिमान, गङ्ग तथा धर्म नामक थे। ये एक सौ तेरासी वर्ष के समय में हुए अर्थात् इनका सबका सम्मिलित समय एक सौ तेरासी वर्ष था।

नक्षत्रो जयपालः पाण्डुर्द्रुमसेनकंसनामानौ।
एते पञ्चापि ततो बभूवुरेकादशाङ्गधराः ॥८१॥

अन्वयार्थ– (ततः) तदनन्तर (नक्षत्रः) नक्षत्र (जयपालः जयपाल) (पाण्डुः) पाण्डु (द्रुमसेन कंसनामानौ) द्रुमसेन और कंस नामक (एते पञ्च) ये पाँच (एकादशाङ्गधराः) ग्यारह अंगधारी (बभूवुः) हुए।

अर्थ–इनके बाद नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, द्रुमसेन और कंस ये पाँच आचार्य ग्यारह अंगधारी हुए।

विंशत्यधिकं वर्षशतद्वयमेषां बभूव युगसंख्या।
आचाराङ्गधराश्चत्वारस्तत उद्भवन् क्रमशः ॥८२॥

अन्वयार्थ– (एषां युग संख्या) इनकी समय संख्या (विंशत्यधिकं) बीस अधिक वर्ष (शतद्वय) दो सौ वर्ष अर्थात् दो सौ बीस वर्ष (बभूव) थी (ततः) तदनन्तर (क्रमशः) क्रम से (चत्वारः) चार (आचाराङ्ग धराः) आचाराङ्ग प्रथम अंग के धारी (उद्भवन्) उत्पन्न हुए।

अर्थ–इनकी सबकी समय संख्या दो सौ बीस वर्ष कुल मिलाकर थी। इसके बाद क्रम से चार आचार्य मात्र आचाराङ्ग प्रथम अंग श्रुत के ज्ञानी हुए।

प्रथमस्तेषु सुभद्रोऽभयभद्रोऽन्योऽपरोऽपि जयबाहुः।
लोहार्योऽन्त्यश्चैतेऽष्टादशवर्षयुगसंख्या ॥८३॥

अन्वयार्थ– (तेषु) उन चारों में (प्रथमः) पहला (सुभद्र) सुभद्र (अन्यः) दूसरा (अभयभद्र) अभयभद्र (अपरः) इसके बाद तीसरा (जयबाहु) जयबाहु (अन्यश्च लोहार्यः) और अन्तिम लोहार्य (एते अष्टादश वर्ष युगसंख्या) इनकी समय संख्या अठारह वर्ष है।

अर्थ–उन चारों आचाराङ्ग प्रथम श्रुत के ज्ञानियों में प्रथम सुभद्र, द्वितीय अभयभद्र, तृतीय जयबाहु और चौथे लोहार्य हुए इन चारों का सम्मिलित समय अठारह वर्ष था।

विनयधरः श्रीदत्तः शिवदत्तोऽन्योऽर्हद्दत्तनामैते।
आरातीया यतयस्ततोऽभवन्नङ्गपूर्वदेशधराः ॥८४॥

अन्वयार्थ– (ततः) इसके पश्चात् (विनयधरः) विनयधर (श्रीदत्तः) श्रीदत्त

(शिवदत्तः) शिवदत्त (अन्यः अर्हद्दत्तः) और अर्हद्दत्त नामक (एते आरातीया यतयः) ये आरातीय यति (अङ्गपूर्व देशधराः) अङ्गपूर्व देशधारी (अभवन्) हुए।

अर्थ–उन चार आचारांगधारियों के पीछे विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त तथा अर्हद्दत्त ये चार आरातीय यति एक देश अङ्गपूर्वों के धारी हुए।

सर्वांग पूर्वदेशैकदेशवित्पूर्वदेशमध्यगते ।
श्रीपुण्ड्रवर्धनपुरे मुनिरजनि ततोऽर्हद्बल्याख्यः ॥८५॥

अन्वयार्थ– (सर्वाङ्ग पूर्व देशैक देश वित्पूर्व देशमध्य गते) सम्पूर्ण अंगपूर्वों के एक देश ज्ञानधारियों तथा पूर्वों के एकदेश पूर्व ज्ञानधारियों के मध्य में (श्रीपुण्ड्रवर्धनपुरे) श्री पुण्ड्रवर्धन नामक नगर में (अर्हद्बल्याख्याः) अर्हद्बलि नामक (मुनिः अजनि) मुनि हुए।

अर्थ–अनन्तर सम्पूर्ण अङ्गपूर्वों के एकदेश ज्ञानधारियों तथा पूर्वों के एक देश ज्ञानधारियों के बीच श्री पुण्ड्रवर्धन नगर में अर्हद्बलि नामक एक मुनि हुए।

स च तत्प्रसारणाधारणा विशुद्धातिसत्क्रियोद्युक्तः ।
अष्टांगनिमित्तज्ञः संघानुग्रहनिग्रहसमर्थः ॥८६॥

अन्वयार्थ– (स च) और वह (तत्प्रसारण धारणाविशुद्धातिसत्क्रियोद्युक्तः) उस श्रुतज्ञान के प्रसारण धारण विशुद्धि करण आदि सत्क्रियाओं में तत्पर, (अष्टाङ्गनिमित्तज्ञः) अष्टाङ्गनिमित्तों का ज्ञाता तथा (संघानुग्रहनिग्रहसमर्थः) मुनि संघ पर अनुग्रह तथा निग्रह करने में समर्थ थे।

अर्थ–और वह अर्हद्बलि आचार्य उस श्रुतज्ञान के प्रसार करने, धारण करने और उसे निर्मल बनाने आदि उत्तम क्रियाओं में पूर्ण संलग्न अष्टांग निमित्तों के ज्ञाता तथा मुनि संघ के अनुग्रह निग्रह (उपदेश प्रायश्चित्त) आदि में पूर्ण समर्थ थे।

आस्ते संवत्सरपञ्चकावसाने युगप्रतिक्रमणम् ।
कुर्वन्योजनशतमात्रवर्तिमुनिजनसमाजस्य ॥८७॥

अथ सोऽन्यदा युगान्ते कुर्वन् भगवान्युगप्रतिक्रमणम् ।
मुनिजनवृन्दमपृच्छत्किं सर्वेऽप्यागता यतयः ॥८८॥

अन्वयार्थ– (अथ) अनन्तर (योजन शतमात्रवर्ति मुनि समाजस्य) सौ

योजन में स्थित मुनि समाज के (सम्वत्सर पञ्चकावसाने) पांच वर्षों की समाप्ति पर होने वाले (युगप्रतिक्रमणम्) युग प्रतिक्रमण को करते हुए (आस्ते) थे (अन्यदा) किसी समय (भगवान्) अर्हदबलि (युगप्रतिक्रमणं कुर्वन्) युग प्रतिक्रमण करते हुए (मुनिवृन्दं) मुनि समूह को (अपृच्छत्) पूछा कि (सर्वे यतयः) सम्पूर्ण मुनि (आगताः) आ गये?

अर्थ–उन भगवान् अर्हद्बलि ने सौ योजन मात्र में बसने वाले मुनियों को पाँच वर्षों की समाप्ति पर होने वाले युगप्रतिक्रमण को जब करा रहे थे तब मुनिसमूह से पूछा कि क्या सभी मुनि आ गये?

तेऽप्यूचुर्भगवन्यमात्मात्मीयेन सकलसंघेन।
समामागतास्ततस्तद्वचः समाकर्ण्य सोऽपि गणी ॥८६॥
काले कलावमुष्मिन्नितः प्रभृत्यत्र जैनधर्मोऽयम्।
गणपक्षपातभेदैः स्थास्यति नोदासभावेन ॥९०॥
इति सञ्चिन्त्य गुहायाः समागता ये यतीश्वरास्तेषु।
कांश्चिन्नन्द्यभिधानान् कांश्चिद्वीरा ह्वयानकरोत् ॥९१॥

अन्वयार्थ– (तेऽपि) वे मुनिराज भी (ऊचुः) बोले (भगवन्) हे भगवान् (वयं) हम लोग (आत्मीयेन) अपने सकल (संघेन) सम्पूर्ण संघ के साथ (समं आगताः) साथ-साथ आ गये हैं (तद्वचः समाकर्ण्य) उन वचनों को सुनकर (सोऽपिगणी) वह अर्हद् बलि आचार्य भी (अमुस्मिन् कलौ काले) इस कलि काल में (अत्र) इस भरत खण्ड आर्य देश में (अयं जैन धर्मः) यह जैन धर्म (इतः प्रभृति) अब से लेकर (गणपक्षपातैः) गण संघ आदि के पक्षपात से (स्थास्यति) स्थिर रहेगा (न उदासभावेन) उदास भाव से तटस्थ भाव से नहीं (इति सञ्चित्य) ऐसा सोचकर (तेषुः) उन मुनियों में (ये यतीश्वराः) जो मुनि (गुहायाः समागताः) गुफा से आये थे (कांश्चित् नद्यभिधानात्) किन्हीं को 'नन्दी' इस नाम से (कांश्चिद् वीरोह्वयान्) किन्हीं को 'वीर' संज्ञा से युक्त (अकरोत्) किया।

अर्थ– वे मुनिराज भी आचार्य महाराज के पूछने पर बोले कि हे भगवान् हम अपने सम्पूर्ण संघ के साथ आ गये हैं उनके इन वचनों को सुनकर उन आचार्य ने भी यह सोचकर कि इस कलिकाल में इस भरत खण्ड के आर्य खण्ड में जैन धर्म अब से लेकर गण (संघ) आदि के पक्षपात को लेकर चलेगा, निरपेक्ष (तटस्थ

भाव) से नहीं- उन मुनियों में जो गुफा से आये थे उनमें किन्हीं को 'नन्दी' संज्ञा से अभिहित किया व किन्हीं को 'वीर' इस संज्ञा से युक्त किया।

प्रथितादशोक वाटात्समागता ये मुनीश्वरास्तेषु।
कांश्चिदपराजिताख्यान्कांश्चिद्देवाह्वयानकरोत् ॥९२॥

अन्वयार्थ- (ये मुनीश्वरा) जो मुनिराज (प्रथितादशोक वाटात्) प्रसिद्ध अशोक वृक्षों के उद्यान से (समागताः) आये हुए थे (तेषु कांश्चित् अपराजिताख्यान्) उनमें किन्हीं को 'अपराजित' इस नाम से (कांश्चिद्देवाह्वयान्) किन्हीं को 'देव' इस नाम से (अकरोत्) किया।

अर्थ-जो मुनिराज प्रसिद्ध अशोक वृक्षों के उद्यान से आये थे, उनमें से किन्हीं को 'अपराजित' नाम से किन्हीं को 'देव' इस नाम से अभिहित किया।

पञ्चस्तूप्यनिवासादुपागता येऽनगारिणस्तेषु।
कांश्चित्सेनाभिख्यान्कांश्चिद्भद्राभिधानकरोत् ॥९३॥

अन्वयार्थ- (येऽनगारिणः) जो अनगार साधु (पञ्चस्तूप्य निवासाद्) पञ्चस्तूपा निवास से (उपागता) आये थे (कांश्चित् सेना भिख्यान्) किन्हीं को 'सेन' इस नाम से तथा (कांश्चित् भद्राभिख्यान्) किन्हीं को 'भद्र' नाम से (अकरोत्) किया।

अर्थ-जो गृह विरत साधु पञ्चस्तूप्य निवास से आये थे उनमें किन्हीं को 'सैन' नाम दिया तथा किन्हीं को 'भद्र' नाम दिया।

ये शाल्मलीमहाद्रुममूलाद्यतयोऽभ्युपागतास्तेषु।
कांश्चिद्गुणधर संज्ञान्कांश्चिद्गुप्ताह्वयानकरोत् ॥९४॥

अन्वयार्थ- (ये यतयः) जो इन्द्रिय दमन करने वाले साधु (शाल्मलीमहाद्रुममूलात्) शाल्मली नामक महा वृक्ष के मूल से (अभ्युपागताः) आये थे (तेषु) उनमें (काश्चित्) किन्हीं को (गुणधर संज्ञान) 'गुणधर' संज्ञा से युक्त किया (कांश्चित् गुप्ताह्वयान्) किन्हीं को 'गुप्त' इस नाम से अभिहित (अकरोत्) किया।

अर्थ-जो इन्द्रिय दमन करने वाले साधु शाल्मली नामक महावृक्ष की शाखाओं में ध्यान करते थे वहाँ से आये साधुओं में किन्हीं को 'गुणधर' संज्ञा से युक्त किया तथा किन्हीं को 'गुप्त' संज्ञा से युक्त किया।

ये खण्डकेसरद्रुममूलान्मुनयः समागतास्तेषु।
कांश्चित्सिंहाभिख्यान्कांश्चिश्चन्द्राह्वयानकरोत् ॥६५॥

अन्वयार्थ- (खण्डकेसरद्रुममूलात्) दरार युक्त केसर वृक्ष के मूल से (ये मुनयः) जो मुनि (समागताः) आये थे (तेषु) उनमें (कांश्चित् सिंहाभिख्यान्) किन्हीं को 'सिंह' इस नाम से (कांश्चित् चन्द्राह्वयान) किन्हीं को 'चन्द्र' इस नाम से (अकरोत्) किया।

अर्थ-जो मुनि खोह युक्त केसर वृक्ष के मूल से आये थे उनमें किन्हीं को 'सिंह' इस नाम से किन्हीं को 'चन्द्र' इस नाम से युक्त किया।

आयातौ नन्दिवीरौ प्रकटगिरिगुहावासतोऽशोकवाटा-
द्देवाश्चान्योऽपरादिर्जित इति यतिपौ सेनभद्राह्वयौ च।
पञ्चस्तूप्यात्सगुप्तौ गुणधरवृषभः शाल्मलीवृक्षमूला-
न्निर्यातौ सिंहचन्द्रौ प्रथितगुणगणौ केसरात्खण्डपूर्वात् ॥६६॥

उक्तञ्च- जैसा कि अन्यत्र भी कहा है-

अन्वयार्थ- (प्रकटगिरिगुहावासतो) जो मुनि प्रकट रूप से पर्वत की गुहा के निवास से (आयातौ) आये थे (नन्दि वीरौ) वे 'नन्दि' और 'वीर' नाम से, (अशोक वाटान्) अशोक वृक्षों के उद्यान से (आयातौ) आये (देवाश्चान्योऽपरादिर्जित इति) 'देव' तथा 'अपराजित' इस नाम से, (पञ्चस्तूप्यात् समायातौ यतिपौ) पञ्चस्तूप्य से आये (यति सेनभद्राह्वयौ) 'सेन' और 'भद्र' नाम से (शाल्मली वृक्षमूलात्) शाल्मली वृक्षों के मूल से (आयातौ) आये हुए (सगुप्तौ) गुप्त सहित (गुणधर वृषभ) गुणधर श्रेष्ठ (खण्ड पूर्वात् केसरात्) खण्ड केसर के मूल से (निर्यातौ) आये हुए (प्रथित गुणगणऔ) प्रसिद्ध गुण समूह से युक्त (सिंहचन्द्रौ) 'सिंह' एवं 'चन्द्र' नामों से युक्त हुए।

अर्थ-प्रकट रूप से जो मुनिगण गुफाओं के आवास से आये थे वे 'नन्दि' और 'वीर' जो अशोक वृक्षों के उद्यान से आये थे वे 'देव' एवं 'अपराजित' जो पञ्चस्तूप निवास से आये थे वे 'सेन' और 'भद्र' जो शाल्मली वृक्षों के मूल से आये थे वे 'गुणधर' और 'गुप्त' तथा जो खण्ड केसर वृक्ष मूल से आये थे प्रसिद्ध गुणधारी 'सिंह' तथा 'चन्द्र' नाम वाले हुए।

अन्ये जगुर्गुहाया विनिर्गता 'नन्दिनो' महात्मानः।
'देवा'श्चाशोकवनात्पञ्चस्तूप्यास्ततः 'सेनः' ॥९७॥
विपुलतरशाल्मलीद्रुममूलगतावासवासिनो 'वीराः'
'भद्रा'श्च खण्डकेसरतरुमूलनिवासिनो जाताः ॥९८॥

अन्वयार्थ- (गुहाया विनिर्गता) गुहा से निकले हुए (महात्मानः नन्दिनः) महात्मा 'नन्दी' (अशोक वनात्) अशोक वन से आये हुए (देवाः) 'देव' (ततः) तदनन्तर (पञ्चस्तू प्यात्) पञ्चस्तूपों से (सेनः) 'सेन' (विपुलतरशाल्मली द्रुममूलगता वास वासिनः) विपुल शाल्मली वृक्ष के मूल में आवास निवास करने वाले (वीराः) 'वीर' (खण्डकेसरतरुमूलनिवासिनः) खण्ड केसर वृक्षों के मूल में निवास करने वाले (भद्राः) 'भद्र' (जाताः) हुए (इति अन्ये जगु) ऐसा अन्य गुरु परम्परा लिखने वालों ने कहा है।

अर्थ-गुहा से निकले हुए महात्मा 'नन्दी' अशोक वन से आये हुए 'देव' पञ्चस्तूप्यों से 'सेन' शाल्मली वृक्षों के मूल में ध्यानाध्यय करने वाले 'वीर' तथा खण्ड केसर वृक्षों के मूलों में निवास करने वाले 'भद्र' कहलाये।

गुहायां वासितो ज्येष्ठो द्वितीयोऽशोकवाटिकात्।
नियातौ 'नदि' 'देवा' भिधानावाद्यावनुक्रमात् ।९९॥
पञ्चस्तूप्यास्तु 'सेना' नां वीराणां शाल्मलीद्रुमः।
खण्डकेसरनामा च 'भद्रः' 'सिंहो'ऽस्य सम्मतः ॥१००॥

अन्वयार्थ- (गुहायां वासितः ज्येष्ठः) गुफाओं में रहने वाला प्रथम (अशोकवाटिकात्) अशोक वाटिका से निकला दूसरा (ये आद्यौ) आदि के दो (अनुक्रमात्) क्रमानुसार (नियातौ) निकले हुए ('नन्दि-देवा' भिधानात्) 'नन्दि' और 'देव' के नाम से पञ्चस्तूप्याः सेना पञ्चस्तूप वासी सेनों के नाम से (शाल्मलिद्रुमः) शाल्मलि वृक्षों से आये वीरों के नाम से (खण्डकेसरनामा) केसर वृक्षों की खोह से आये 'भद्र' तथा 'सिंह' इस नाम से (अस्य-सम्मतः) इन पूज्य अर्हद् बलि आचार्य को मान्य थे।

अर्थ- गुफा में रहने वाले पहले अशोक वृक्षों के उद्यानों से आने वाले, द्वितीय ये आदि के दो क्रमशः 'नन्दि' तथा 'देव' नाम से अभिहित थे, पञ्चस्तूप्य वासी 'सेनों' के नाम से, शाल्मलि वृक्षों से आये 'वीर' नाम से, केसर वृक्षों की

खोह से आये 'भद्र' तथा 'सिंह' नाम से, इन पूज्य अर्हद् बलि आचार्य को मान्य थे।

एवं तस्यार्हद्बलेर्मुनिजनसङ्घप्रवर्तकस्यासन्।
विनययजना मुनीन्द्राः पञ्चकुलाचारतोपास्याः ॥१०१॥

अन्वयार्थ- (एवं) इस प्रकार (तस्य) उन (मुनि संघ प्रवर्तकस्य) मुनि संघ के प्रवर्तक (अर्हद्बले) अर्हद्बलि का (विनययजना) विनय पूर्वक अपने आचार्य की पूजा करने वाले (मुनीन्द्राः) मुनीश्वर (पञ्चकुलाचारतः) पाँच कुलों के आचार से (उपास्याः) उपासनीय (आसन्) थे।

अर्थ-इस प्रकार मुनि संघ के प्रवर्तक उन आचार्य अर्हद्बलि के विनयपूर्वक पूजा करने वाले मुनिवर इन पाँच कुलों के आचार से-

१. गुफाओं के निवास से आने वाले, २. अशोक वृक्षों के उद्यान से आने वाले, ३. पञ्चस्तूप्य निवास से आने वाले, ४. शाल्मली वृक्षों की खोह से आने वाले तथा ५. केसर वृक्षों की खोह से आने वाले- इस प्रकार पाँच समूहों के आचार से वे उपासनीय थे।

तस्यानंतरमनगारपुङ्गवो माघनन्दिनामाऽभूत्।
सोऽप्यङ्गपूर्वदेशं प्रकाश्य समाधिना दिवं यातः ॥१०२॥

अन्वयार्थ- (तस्य) उन अर्हद्बलि के (अनन्तरं) पश्चात् (माघनन्दिनामा) माघनन्दि नाम के (अनगार पुङ्गव) साधुओं में श्रेष्ठ, (अभूत्) हुए, (सोऽपि) वह भी (अङ्गपूर्व देशं प्रकाश्य) अंग और पूर्वों के एक देश का प्रकाशन कर (समाधिना) समाधि-सल्लेखना से (दिवंयातः) स्वर्ग को प्राप्त हुए।

अर्थ-उन अर्हद्बलि आचार्य के बाद माघनन्दि नाम के श्रेष्ठ साधु हुए तथा उन्होंने अंग एवं पूर्वों के एकदेश का प्रकाशन कर परम्परा चलाकर समाधिपूर्वक मरण कर स्वर्ग प्राप्त किया।

देशे ततः सुराष्ट्रे गिरिनगरपुरान्तिकोर्जयन्तगिरौ।
चन्द्रगुहाविनिवासी महातपाः परममुनिमुख्यः ॥१०३॥
अग्रायणीयपूर्वस्थितपंचमवस्तुगतचतुर्थमहा।
कर्मप्राभृतकज्ञः सूरिर्धरसेननामाऽभूत् ॥१०४॥

अन्वयार्थ- (ततः) तदनन्तर (सुराष्ट्र देशे) सौराष्ट्र देश में, (गिरिनगर पुरान्तिकोर्जयन्तगिरौ) गिरिनगरपुर के निकट उर्ज्यन्त पर्वत पर (चन्द्रगुहा विनिवासी) चन्द्र गुहा में रहने वाले (महातपाः) महा तपस्वी (परममुनि मुख्यः) श्रेष्ठ मुनियों में मुख्य आचार्य (अग्रायणीय पूर्व स्थित पञ्चमवस्तुगत चतुर्थ महाकर्म प्राभृतकज्ञः) अग्रायणी नामक द्वितीय पूर्व स्थित पञ्चम वस्तु के अन्तर्गत चतुर्थ महाकर्म प्राभृत के ज्ञाता (सूरिः) आचार्य धरसेन नाम के (अभूत्) थे।

अर्थ- तदनन्तर सौराष्ट्र देश में गिरिनगरपुर जिसको आज जूनागढ़ कहा जाता है उसके निकट उर्ज्जयन्त पर्वत पर चन्द्र नामक गुफा में निवास करने वाले महातपस्वी, मुनियों में श्रेष्ठ तथा अग्रायणी नामक दूसरे पूर्व के पञ्चम वस्तु के अन्तर्गत चौथे महाकर्म प्राभृत के ज्ञाता धरसेन नामक श्रेष्ठ आचार्य थे।

सोऽपि निजायुष्यान्तं विज्ञायास्माभिरलमधीतमिदम्।
शास्त्रं व्युच्छेदमवाप्स्यतीति सञ्चिन्त्य निपुणमतिः ॥१०५॥
देशेन्द्रदेशनामनि वेणाकतटीपुरे महामहिमा।
समुदितमुनीन् प्रति ब्रह्मचारिणा प्रापयल्लेखम् ॥१०६॥

अन्वयार्थ- (निपुणमतिः) निपुण बुद्धि वाले (महामहिमा) महान् महिमा वाले (सोऽपि) वह धरसेन मुनि (निजायुष्यान्तं) अपनी आयु के अन्त को जानकर (अस्माभिः) हमारे द्वारा (अलं अधीतं इदं शास्त्रं) पर्याप्त रूप से गंभीर रूप से अध्ययन किया गया यह शास्त्र (व्युच्छेदं) व्युच्छित्ति को विनाश को (अवाप्स्यतीति) प्राप्त हो जायेगा ऐसा (विज्ञाय) जानकर (वेणाकतटी पुरे) वेणाक नाम वाली नदी के किनारे स्थित पुर में (इन्द्रदेश नामनि) इन्द्र देश नामक (देशे) देश में (समुदित मुनीन् प्रति) इकट्ठे हुए मुनियों के प्रति (ब्रह्मचारिणा) एक ब्रह्मचारी द्वारा (लेखम्) लेख पत्र (प्रापयत्) पहुँचाया।

अर्थ-निपुण बुद्धि से युक्त महा महिमाशाली, उन धरसेन महामुनि ने भी अपनी आयु का अन्तिम समय जानकर हमारे द्वारा गम्भीर रूप से अध्ययन किया गया यह शास्त्र कालान्तर में विच्छेद हो जाने वाला है ऐसा जान कर वेणाक नदी के किनारे स्थित पुर में, जो कि इन्द्र नामक देश में था- स्थित मुनि समुदाय के प्रति एक ब्रह्मचारी के द्वारा लेख (पत्र) पहुँचवाया।

आदाय लेखपत्रं तेऽप्यथ तद्ब्रह्मचारिणो हस्तात्।
प्रविमुच्य बन्धनं वाचयाम्बभूवुस्तदा महात्मानः ॥१०७॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (तेऽपि महात्मानः) वे महात्मा साधुजन (तद् ब्रह्मचारिणो हस्तात्) उस ब्रह्मचारी के हाथ से (लेख पत्रं आदाय) उस पत्र को प्राप्त कर (बन्धनं प्रविमुच्य) उसके बन्धकों को खोलकर (तदा) उस समय (वाचयाम्बभूवुः) पढ़ा।

अर्थ- उन महात्मा साधुओं ने भी उस ब्रह्मचारी के हाथ से पत्र लेकर उनका बन्धन खोलकर उस समय पढ़ा।

स्वस्ति श्रीमत इत्यूर्जयन्ततटनिकटचन्द्रगुहा-
वासाद्धरसेनगणी वेणाकतटसमुदितयतीन् ॥१०८॥
अभिवन्द्य कार्यमेवं निगदत्यस्माकमायुरवशिष्टम्।
स्वल्पं तस्मादस्मच्छ्रू तस्य शास्त्रस्य व्युच्छित्तिः ॥१०९॥
न स्याद्यथा तथा द्वौ यतीश्वरौ ग्रहणधारणसमर्थौ।
निशितप्रज्ञौ यूयं प्रस्थापयतेति लेखार्थम् ॥११०॥

अन्वयार्थ- (स्वस्ति श्रीमत) कल्याण भाजन हों, शोभा युक्त हों (ऊर्जयन्ततट निकटचन्द्रगुहावासत्) ऊर्जयन्त की तलहटी के निकट चन्द्र गुहा निवास से (धरसेन गणी) धरसेन आचार्य (वेणाकतटसमुदितयतीन्) वेणाक नदी के तटवर्ती स्थित मुनियों को (अभिवंद्य) नमस्कार कर (एवं कार्यं निगदति) यह कार्य कहता है कि (अस्माकं) हमारी (आयुः) आयु (स्वल्पं) थोड़ी (अवशिष्टं) बची है (तस्मात्) इस कारण से (अस्मत् श्रुतस्य) हमारे द्वारा अधीन श्रुतज्ञान की या सुने गये (शास्त्रस्य) शास्त्र की (व्युच्छित्ति) विच्छेद (यथा न स्यात्) जैसे न हो सके (तस्मात्) इस कारण से (ग्रहण धारणसमर्थौ) ग्रहण करने एवं उसकी धारणा करने में समर्थ (निशित प्रज्ञौ) तीक्ष्ण प्रतिभा वाले (द्वौ यतीश्वरौ) दो मुनिवर (प्रस्थापयत्) भेजिए (इति) इस प्रकार (लेखार्थम्) लेख का अर्थ था।

अर्थ- कल्याण भाजन एवं शोभा युक्त हों। ऊर्जयन्त (गिरिनार) पर्वत की तलहटी में स्थित चन्द्र नामक गुफा के आवास से आचार्य धरसेन वेणाक नदी के तट पर एकत्र मुनिराजों की वन्दना कर यह कार्य कहता है कि हमारी आयु अब अल्प शेष है इस कारण हमारे द्वारा अधीन शास्त्र (श्रुतज्ञान) का जैसे विच्छेद न

हो जावे अतः ग्रहण और धारण करने में समर्थ तीक्ष्ण बुद्धि वाले दो मुनिराज (यहाँ) भिजवाये जावें (आप भिजवावें) यही लेख-पत्र का तात्पर्य था।

सम्यगवधार्य तैरपि तथाविधौ द्वौ मुनी समन्विष्य।
प्रहितौ तावपि गत्वा चापतुररमूर्जयन्तगिरिम् ॥१११॥

अन्वयार्थ– (तैरपि) उन मुनिराजों द्वारा (सम्यक् अवधार्य) भले प्रकार निश्चय करके (तथाविधौ) उस प्रकार के तीक्ष्ण बुद्धि वाले (द्वौ मुनी) दो मुनियों को (समन्विष्य) खोज करके (प्रहितौ) भेजा गया (तावपि) वे दोनों भी (गत्वा) जाकर यथा शीघ्र (ऊर्जयन्तगिरिं च आपतुः) ऊर्जयन्तगिरि पहुँचे।

अर्थ–उन वेणाक तटवर्ती मुनिराजों द्वारा भले प्रकार निश्चय करके उस प्रकार के तीक्ष्ण बुद्धि वाले दो मुनियों को खोजकर धरसेनाचार्य महाराज के अनुरोध से वहाँ भेजा वह मुनिद्वय भी शीघ्र ही ऊर्जयन्त गिरि पहुँचे।

आगमनदिने च तयोः पुरैव धरसेनसूरिरपि रात्रौ।
निजपादयोः पतन्तौ धवलवृषावैक्षत् स्वप्ने ॥११२॥

अन्वयार्थ– (धरसेन सूरिरपि) धरसेन आचार्य ने भी (रात्रौ) रात्रि में (पुरैव) उन दो मुनियों के आगमन के पहले ही (तयोः) उन दोनों के (आगमन दिने) आने के दिन (निजपादयोः) अपने पाँवों में (पतन्तौ) गिरते हुए (धवलवृषौ) दो सफेद बैल (स्वप्ने ऐक्षत) स्वप्न में देखे।

अर्थ–उन धरसेनाचार्य ने उन दो मुनियों के आने के दिन उनके आने के पहले ही रात्रि में अपने पावों में पड़ते हुए दो सफेद बैल स्वप्न में देखे।

तत्स्वप्नेक्षणमात्राज्जयतु श्रीदेवतेति समुपलपन्।
उदतिष्ठदतः प्रातः समागतावैक्षत मुनी द्वौ ॥११३॥

अन्वयार्थ– (तत्स्वप्नेक्षणमात्रात्) उस स्वप्न को देखने मात्र से (श्रीदेवता जयतु) श्रीदेवता जयवंत हो (इति) इस प्रकार (समुपलपन्) कहते हुए (प्रातः) प्रातःकाल (उदतिष्ठदतः) उठते हुए ही (समागतौ) आये हुए (द्वौ मुनी) दो मुनि (ऐक्षत) देखे।

अर्थ–उस स्वप्न को देखने मात्र से 'श्री देवता जयवन्त हो' ऐसा कहते हुए प्रातःकाल उठते ही उन्होंने आये हुए दोनों मुनियों को देखा।

प्राघूर्णिकोचितविधिं तयोर्विधायादरात्ततस्ताभ्याम्।
विश्राम्य त्रीन्दिवसान् निवेदितागमनहेतुभ्याम्॥११४॥
सुपरीक्षा हृन्निर्वर्तिकरीति सन्चिन्त्य दत्तवान् सूरिः।
साधयितुं विद्ये द्वे हीनाधिकवर्णसंयुक्ते ॥११५॥

अन्वयार्थ- (आदरात्) बड़े आदर से (तयोः) उन दोनों मुनियों की (प्राघूर्णिकोचितविधिं विधाय) अतिथि के लिए उचित हेतु योग्य विधि करके (निवेदितागमन हेतुभ्याम्) प्रकट किया है, आगमन का जिन्होंने ऐसे उन दोनों मुनियों के लिये (तीन दिवसान्) तीन दिनों तक विश्राम देकर (सुपरीक्षा) अच्छी तरह परीक्षा (हृन्निर्वर्तिकरी) हृदय को आनन्द देने वाली है (इति) ऐसा (सञ्चिंत्य) सोचकर (सूरिः) आचार्य महाराज ने (हीनाधिकवर्णसंयुक्ते) हीन व अधिक वर्णों से संयुक्त (द्वे) दो (विद्ये) विद्यायें (साधयितुं) सिद्ध करने के लिये (दत्तवान्) दीं।

अर्थ- बड़े आदर से उन दोनों की अतिथियों के योग्य विधि करके अपने आगमन का हेतु निवेदन करने वाले उन दोनों मुनियों के लिये आदरपूर्वक तीन दिन तक विश्राम देकर अच्छी तरह से परीक्षा हृदय को आनंद एवं सन्तोष देने वाली होती है-ऐसा विचार कर हीन एवं अधिक वर्णों से युक्त दो विद्यायें (मंत्र) सिद्ध करने को उन आचार्यवर्य ने दीं।

श्रीमन्नेमिजिनेश्वरसिद्धिशिलायां विधानतो विद्या-
संसाधनं विदधतोस्तयोश्च पुरतः स्थिते देव्यौ ॥११६॥

अन्वयार्थ- (श्रीमन्नेमिजिनेश्वर सिद्धि शिलायां) भगवान् श्री नेमिनाथ ने जिस शिलापर ध्यानारूढ़ होकर मुक्ति पाई थी उसी शिला पर (विधानतः) विधिपूर्वक (विद्या संसाधनं विदधतोः) विद्या की सिद्धि में तत्परता से संलग्न (तयोः) उन दोनों मुनियों के (पुरतः) सामने (देव्यौ) दो देवियाँ (स्थिते) उपस्थित हुईं।

अर्थ-भगवान श्री नेमिनाथ ने ध्यान में मग्न होकर जिस शिला से सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त की थी उसी शिलापर विधिपूर्वक विद्या (मंत्र) सिद्ध करते हुए उन मुनीश्वरों के सामने दो विद्या-देवियों उपस्थित हुईं।

हीनाक्षरविद्यासाधकस्य देव्येकलोचनाग्रेऽस्थात्।
अधिकाक्षरविद्यासाधकस्य सा दन्तुरा तस्थौ ॥११७॥

अन्वयार्थ- (हीनाक्षर विद्या साधकस्य) हीन अक्षर वाले मंत्र साधक के (अग्रे) आगे (एकलोचना देवी) एक आँख वाली देवी (अस्थात्) उपस्थित हो गई। (अधिकाक्षर साधकस्य) अधिक अक्षर वाले मंत्र साधक के आगे (सा) वह देवी (दन्तुरा) लम्बे-लम्बे दाँतों वाली उपस्थित हुई।

अर्थ-जिन मुनिराज ने हीन अक्षर वाले मंत्र की आराधना की थी, उनके सामने सिद्ध देवी एक नेत्रवाली प्रकट हुई। जिन मुनिराज ने अधिकाक्षर युक्त मंत्र सिद्ध किया था उनके सामने लम्बे-लम्बे दाँतों वाली देवी प्रकट हुई।

दृष्ट्वा ताविति देव्यौ न देवतानां स्वभाव एष इति।
प्रविचिन्त्य ततो विद्यामंत्रव्याकरणविधिनैव ॥११८॥
प्रस्तार्य न्यूनाधिकवर्णक्षेपापचयविधानेन।
पुनरपि पुरतश्च तयोर्देव्यौ ते दिव्यरूपेण ॥११९॥
केयूरहारनूपुरकटककटीसूत्रभासुरशरीरे।
अग्रे स्थित्वा वदतां किं करणीयं प्रवदतेति ॥१२०॥

अन्वयार्थ- (तौ) वे दोनों मुनि (देव्यौ इति दृष्ट्वा) उन देवियों को इस तरह विकृत देखकर (देवतानां एष) देवताओं का यह (स्वभावः न) स्वभाव-स्वरूप नहीं है (इति प्रविचिन्त्य) ऐसा सोचकर (विद्या मंत्र) उन विद्या मंत्रों को (व्याकरण विधिना) व्याकरण की विधि से (प्रस्तार्य) प्रस्तुत करके(न्यूनाधिकवर्णक्षेपापचय विधानेन) न्यून वर्ण वाले मंत्र में उचित रीति से जोड़कर तथा अधिक वर्ण वाले मंत्र में से उचित वर्ण हटाकर आराधना करने से (पुनरपि) फिर से (तयो पुरतः) उनके सामने (ते देव्यौ) वे दानों देवियाँ (दिव्य रूपेण) दिव्य रूप लेकर (केयूरहारनूपुर कटक कटीसूत्र भासुर शरीरे) केयूर, हार, नूपुर, कटक तथा कटिसूत्र से शोभायमान शरीर वाली (अग्रे स्थित्वा) आगे खड़ी होकर (वदतां) बोली (किं करणीयं) हमें क्या करना है (प्रवदत इति) बोलिये, ऐसा बोला।

अर्थ-वे दानों मुनिराज उन उपस्थित हुई विकृत शरीर वाली देवियों को

देखकर, यह देवताओं का स्वरूप नहीं है- ऐसा सोचकर उन विद्यामंत्रों को व्याकरण विधि से शोधकर न्यून वर्ण वाले मंत्र में उचित वर्ण-मात्रादि जोड़कर तथा अधिक वर्णादि वाले मंत्र में से उचित वर्ण-मात्रा हटाकर शुद्ध विधि से आराधना की। अतः फिर से वे देवियाँ उनके सामने दिव्य रूप में केयूर (कड़ा) हार, नूपुर, कटक, कटिसूत्र से सुन्दर शरीर वाली उनके सामने उपस्थित होकर- बोलिये हमें क्या करना है- ऐसा बोलीं।

तावप्यूचतुरेतन्नास्माकं कार्यमस्ति तत्किमपि।
ऐहिकपारत्रिकयोर्भवतीभ्यां सिध्यति यदत्र परम् ॥१२१॥
किन्तु गुरु नियोगादावाभ्यां विहितमेतदिति वचनम्।
श्रुत्वा तयोरभीष्टं ते जग्मतुः स्वास्पदं देव्यौ ॥१२२॥

अन्वयार्थ- (तौ अपि ऊचतु) वे दोनों मुनिराज भी बोले- (अस्माकं) हम लोगों के (किमपि कार्य न अस्ति) कोई भी कार्य नहीं है। (यद भवतीभ्या) जो आप दोनों द्वारा (ऐहिक पारित्रकयो) इस लोक और परलोक सम्बन्धी (परमं सिद्धयति) जो अच्छी तरह सिद्ध करना हो। किन्तु (गुरुनियोगात्) गुरु की आज्ञा से (आवाभ्यां एतद् विहितं) हम लोगों के द्वारा यह किया गया है (इति वचनं) ऐसे वचन (तयोरभीष्टं) उन दोनों के अभीष्ट वचन सुनकर (ते देव्यौ) वे देवियाँ (स्वास्पदं) अपने स्थान को (जग्मतुः) चली गईं।

अर्थ- वे दोनों मुनिराज (पुष्पदन्त-भूतबलि) बोले कि हमारा तो कोई भी कार्य नहीं है, न इस लोक सम्बन्धी न परलोक सम्बन्धी- जो आप लोगों के द्वारा सिद्ध होना हो। परन्तु गुरु के आदेश से ही हम लोगों ने मंत्र द्वारा आपको सिद्ध किया है। उन मुनिराजों के इन अभीष्ट वचनों को सुनकर वे दोनों देवियाँ अपने-अपने स्थान को चली गयीं।

विद्यासाधनमेवं विधाय तोषात्ततो गुरोः पार्श्वम्।
गत्वा तौ निजवृत्तान्तमवदतां तद्यथावृत्तम् ॥१२३॥

अन्वयार्थ- (एवं विद्या साधनं विधाय) इस प्रकार विद्या का साधन कर (ततो) तदनन्तर वे (तोषात्) बड़ी सन्तुष्टि पूर्वक (गुरोः पार्श्वम् गत्वा) गुरु धरसेनाचार्य के पास जाकर (तौ) उन दोनों मुनिराजों ने (यथावृत्तम्) जैसा-जैसा हुआ, अपना समस्त वृत्तान्त गुरु के निकट (अवदताम्) कहा।

अर्थ–तदन्तर भले प्रकार विद्या का साधन कर बड़े सन्तोषपूर्वक उन्होंने गुरु धरसेनाचार्य के निकट जाकर यथा तथ्य (जैसा हुआ) समस्त वृतान्त प्रकट किया।

सोऽप्यतियोग्याविति सञ्चिन्त्य ततः सुप्रशस्ततिथिवेला।
नक्षत्रेषु तयोर्व्याख्यातुं प्रारब्धवान् ग्रन्थम् ॥१२४॥

अन्वयार्थ– (सोऽपि) वह आचार्य धरसेन स्वामी भी (अति योग्यौ इति सञ्चिन्त्य) ये दोनों पुष्पदन्त और भूतबलि मुनि अति योग्य हैं- ऐसा विचारकर (ततः) तदनन्तर (सुप्रशस्त तिथि वेला नक्षत्रेषु) उत्तमतिथि, समय और नक्षत्र में (तयोः) उन दोनों के निमित्त (ग्रन्थं) आगम शास्त्र की (व्याख्यातुं) व्याख्या करना, (प्रारब्धवान्) प्रारम्भ किया।

अर्थ–उन महाराज धरसेनाचार्य ने "ये दोनों अत्यन्त योग्य हैं" - ऐसा सोचकर उत्तम तिथि, मुहूर्त और नक्षत्र में उन दोनों के लिए आगम ग्रन्थ का व्याख्यान शुरू किया- अर्थात् उन्हें द्वादशांग जिनवाणी, विशेषतया कर्म सिद्धान्त पढ़ाना प्रारम्भ किया।

ताभ्यामप्यध्ययनं कुर्वाणाभ्यामपास्ततन्द्राभ्याम्।
परममविलङ्घ्याभ्यां गुरुविनयं ज्ञानविनयं च ॥१२५॥
दिवसेषु कियत्स्वपि गतेष्वथाषाढमासि सितपक्षे।
एकादश्यां च तिथौ ग्रन्थसमाप्तिः कृता विधिना ॥१२६॥

अन्वयार्थ– (अपास्ततन्द्राभ्यां) तन्द्रा आलस्य रहित होकर (अध्ययनं कुर्वाणाभ्यां) अध्ययन करने वाले गुरु की आज्ञा का उल्लंघन न करने वाले तथा ज्ञान की विनय करने वाले उन दोनों मुनियों द्वारा (कियत्सु दिवसेषु) कतिपय दिवस व्यतीत होने पर (आषाढ़ मासि) आषाढ़ के महीने में (सित पक्षे) शुक्ल पक्ष में (एकादश्यां तिथौ) एकादशी की तिथि में (विधिना) विधिपूर्वक (ग्रन्थसमाप्तिः) ग्रन्थ की समाप्ति (कृता) की।

अर्थ–आलस्य छोड़कर, पूरी तरह सजग रहकर अध्ययन करने वाले तथा साथ ही गुरु की विनय (आज्ञा) का उल्लंघन न करने वाले तथा ज्ञान की विनय का भी उल्लंघन न करने वाले उन दोनों (पुष्पदन्त, भूतबलि) मुनिराजों द्वारा कितने ही दिन व्यतीत होने पर आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी की तिथि में विधिपूर्वक अध्ययन करते हुए आगम ग्रन्थ का अध्ययन समाप्त किया गया।

तद्दिन एवैकस्य द्विजपंक्तिं विषमितामपास्य सुरैः।
कृत्वा कुन्दोपमितां नाम कृतं पुष्पदन्त इति ॥१२७॥

अन्वयार्थ- (सुरैः) देवों द्वारा (एकस्य) एक की (तद्दिन एव) उसी दिन ही (विषमितां) विषमिता को प्राप्त (द्विज पंक्ति) दाँतों की पंक्ति को (अपास्य) दूर कर (कुन्दोपमितां कृत्वा) कुन्द के समान सरल और धवल करके (पुष्पदन्त इति) पुष्पदन्त यह नाम (कृतम्) नाम किया।

अर्थ-देवों द्वारा उसी दिन ही एक मुनिराज की विषम दन्तावलि को सम, सुन्दर और धवल करके पुष्पदन्त का यश नाम किया।

अपरोऽपि तुर्यनादैर्जयघोषैर्गन्धमाल्यधूपाद्यैः।
भूतपतिरेष इत्याहूतो भूतैर्महं कृत्वा ॥१२८॥

अन्वयार्थ- (अपरोऽपि) दूसरे मुनिराज भी (भूतैः) देवों द्वारा (तूर्यनादैः) तूर्यनादों द्वारा (जयघोषै) 'जय हो' की घोषणाओं द्वारा तथा (गन्धमाल्य धूपाद्यैः) गन्धमाला धूपादिक द्वारा (महं कृत्वा) उत्सव करके (एष भूतपतिः) यह भूतपति हैं (इति आहूतः) इस प्रकार पुकारे गये।

अर्थ- दूसरे मुनिराज भी भूतजाति के देवों द्वारा तुरही वादन द्वारा, जय-जय की घोषणाओं द्वारा तथा सुगन्धित मालाओं, धूपों द्वारा उत्सव समायोजित करके यह 'भूतपति' हैं इस प्रकार पुकारे गये।

स्वासन्नमृतिं ज्ञात्वा मा भूत्संक्लेशमेतयोरस्मिन्।
इति गुरुणा सञ्चिन्त्य द्वितीयदिवसे ततस्तेन ॥१२९॥
प्रियहितवचनैरमुष्य तावुभावेव कुरीश्वरं प्रहितौ।
तावपि नवभिदिवसै गत्वा तत्पत्तनमवाप्य ॥१३०॥
योगं प्रगृह्य तत्राषाढे मास्यसितपक्षपञ्चम्याम्।
वर्षाकालं कृत्वा विहरन्तौ दक्षिणाभिमुखं ॥१३१॥
जग्मतुरथ करहाटे तयोः स यः पुष्पदन्तनाममुनिः।
जिनपालिताभिधानं दृष्ट्वाऽसौ भागिनेयं स्वम् ॥१३२॥
दत्वा दीक्षां तस्मै तेन समं देशमेत्य वनवासम्।
तस्थौ भूतबलिरपि मथुरायां द्रविडदेशेऽस्थात्॥१३३॥

अन्वयार्थ– (तेन गुरुणा) उन गुरु धरसेनाचार्य द्वारा (द्वितीय दिवसे) किसी अन्य दिन (स्वासन्नमृतिं ज्ञात्वा) अपनी निकट मृत्यु को जानकर (अस्मिन्) इस स्थान पर (एतयोः) इन दोनों शिष्यों को (संक्लेश मा भूत्) संक्लेश नहीं हो मेरी मृत्यु का विषाद नहीं हो (इति सञ्चिन्त्य) ऐसा सोचकर (अमुष्य) इस स्थान से (प्रियहित वचनैः) प्रिय और हितकारी वचनों के द्वारा (तौ उभौ एव) वे दोनों पुष्पदन्त एवं भूतबलि (कुरीश्वरं) कुरीश्वर नामक स्थान नगर को भेज दिये गये (गत्वा) चलकर (नवभिः दिवसै) नौ दिनों में (तत् पत्तन अवाप्य) उस नगर को प्राप्त कर (तत्र) वहाँ उस कुरीश्वर नामक नगर में, (आषाढ़े मासि) आषाढ़ महीने में (असित पक्ष पञ्चम्यां) कृष्ण पक्ष की पञ्चमी को (योगं प्रगृह्य) योग ग्रहण करके (वर्षाकालं कृत्वा) वर्षा काल के चातुर्मास बिताकर (दक्षिणाभि मुखं) दक्षिण की ओर (विहरन्तौ) विहार करते हुए (अथ करहाटे जग्मतु) अनन्तर करहार नगर को गये (तयोः) उन दोनों मुनियों में (यः पुष्पदन्तनाम मुनिः) पुष्पदन्त नामक मुनि थे (सः) वह (जिनपालिताभिधानं) जिनपालित नामक (स्वं भागिनेयम्) अपने भानजे भगिनीपुत्र को (दृष्ट्वा) देखकर (तस्मै) उसके लिये (दीक्षां) दीक्षा (दत्वा) देकर (तेन समं) उसके साथ (वनवासं देशं एत्य) वनवास देश में पहुँच कर (तस्थौ) ठहर गये। (भूतबलिरपि) भूतबलि मुनिराज भी (द्रविड देशे) द्रविड देश में (मथुरायां) मथुरा नगरी में आधुनिक नाम मदुरै (अस्थात्) ठहर गये।

अर्थ–इसके अनन्तर उन आचार्य धरसेन ने अपनी मृत्यु को निकट जानकर यहाँ रहने से इन्हें मेरी मृत्यु का विषाद न हो- ऐसा सोचकर एक दिन प्रिय और हितकारी वचनों से उन्हें समझाकर उन दोनों (पुष्पदन्त एवं भूतबलि) को कुरीश्वर नामक स्थान की ओर भेजा और वे नौ दिनों तक अनवरत चलकर उस नगर में पहुँचे। वहाँ आषाढ़ महीने के कृष्ण पक्ष की पञ्चमी को योग धारण कर वर्षा काल वहीं बिताकर दक्षिण की ओर विहार करते हुए करहार देश गये। उनमें जो पुष्पदन्त मुनिराज थे उन्होंने जिनपालित नामक अपने भानजे को देखकर उसे दीक्षित किया और उसके साथ वनवास देश जाकर ठहर गये। भूतबलि मुनि भी द्रविड़ देशस्थ मथुरा नगरी जिसे आज कल 'मदुरै' कहा जाता है वहाँ ठहर गये।

नोट– १२८वें पद में पुष्पदन्त मुनिराज के साथी मुनिराज का नाम भूतों ने भूतपति दिया था पर यहाँ १३३वें श्लोक में भूतबलि शास्त्र-प्रचलित नाम ही आ गया है। इसका अर्थ भी भूत-पूजित है।

अथ पुष्पदन्तमुनिरप्यध्यापयितुं स्वभागिनेयं तम्।
कर्मप्राकृतिप्राभृतमुपसंहार्यैव षड्भिरिह खण्डैः ॥१३४॥
वांच्छन् गुणजीयादिकविंशतिविधसूत्रसत्यप्ररूपणया।
युक्तं जीवस्थानाद्यधिकारं व्यरचयत्सम्यक् ॥१३५॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (पुष्पदन्त मुनिरपि) पुष्पदन्त मुनि भी (तं) उस (स्वभागिनेयं) अपने भगिनी पुत्र को (अध्यापयितुं) पढ़ाने के लिए (षड्भिः खण्डैः) छह खण्डों के द्वारा (इह) यहाँ (गुणजीवादिकविंशतिविधसूत्रसत्प्ररूपणया) गुणस्थान, जीवस्थान आदिक बीस प्रकार की सत्प्ररूपणाओं से युक्त, (कर्मप्रकृति प्राभृतं उपसंहार्य एव) कर्म प्रकृति प्राभृत का उपसंहार करके संचय करके (जीवस्थानादि अधिकारं वाञ्छन्) जीवस्थान आदि अधिकारों की इच्छा करते हुए, (सम्यक्) सम्यक् प्रकार (व्यरचयत्) रचना की।

अर्थ-तदन्तर श्री पुष्पदन्त मुनिराज ने अपने उस भागिनेय जिनपालित को पढ़ाने के लिए इस करहाट नगर में छह खण्डों के द्वारा गुणस्थान, जीवस्थान आदि बीस प्रकार की सत्प्ररूपणा से युक्त कर्मप्रभृतियों से युक्त प्रकरण का संक्षेप कर सम्यक्रीति से जीवस्थानादि अधिकार की रचना की।

सूत्राणि तानि शतमध्याप्य ततो भूतबलिगुरोः पार्श्वम्।
तदभिप्रायं ज्ञातुं प्रस्थापयदगमदेषोऽपि ॥१३६॥

अन्वयार्थ- (तानि) उन (शतं सूत्राणि) सौ सूत्रों को पढ़ाकर (ततो) तदनन्तर (भूतबलि गुरोः पार्श्वं) भूतबलि गुरु के निकट (तदभिप्रायं ज्ञातुं) उसके अर्थ को जानने के लिए (प्रस्थानापयत्) भेजा (एषोऽपि) यह जिनपालित भी (अगमत्) वहाँ गये पहुँचे।

अर्थ-उन सौ सूत्रों को पढ़ाकर अनन्तर भूतबलि गुरु के निकट उनका अर्थ जानने के लिए भेजा। वह जिनपालित भी शिष्यबुद्धि से उनके पास पहुँचे।

तेन ततः परिपठितां भूतबलिः सत्प्ररूपणां श्रुत्वा।
षट्खण्डागमरचनाभिप्रायं पुष्पदन्त गुरोः ॥१३७॥
विज्ञायाल्पायुष्यानल्पमतीन्मानवान् प्रतीत्य ततः।
द्रव्यप्ररूपणाद्यधिकारः खण्डपञ्चकस्यान्वक् ॥१३८॥

सूत्राणि षट्सहस्रग्रन्थान्यथ पूर्वसूत्रसहितानि।
प्रविरच्य महाबन्धाह्वयं ततः षष्टकं खण्डम् ॥१३९॥
त्रिंशत्सहस्रसूत्रग्रन्थं व्यरचपदसौ महात्मा।
तेषां पञ्चानामपि खण्डानां शृणुत नामानि ॥१४०॥

अन्वयार्थ– (ततः) अनन्तर (तेन) उन पुष्पदन्त शिष्य जिनपालित द्वारा (अभिपठितां) पढ़ी गई (सत्प्ररूपणां) सत्प्ररूपणा को सुनकर (पुष्पदन्त गुरोः) पुष्पदन्त गुरु के (षट्खण्डागम रचनाभिप्रायं) षट्खण्डागम की रचना के अभिप्राय को (विज्ञाय) जानकर (मानवान्) मानवों को (अल्पायुष्मान्) अल्प आयु से युक्त तथा (अल्पमतीन्) अल्पबुद्धि से युक्त (प्रतीत्य) जानकर (द्रव्यप्ररूपणाधिकारं) द्रव्यप्ररूपणाधिकार को (अन्वक्) पीछे (खण्डपञ्चकस्य) पाँच खण्डों के बाद (पूर्वसूत्रसहितानि) पुष्पदन्त गुरु द्वारा रचित सूत्रों सहित (ग्रन्थस्य षट्सहस्र सूत्राणि) ग्रन्थ के छह हजार सूत्रों को (प्रविरच्य) रचकर (त्रिंशत्सहस्रसूत्र ग्रन्थं) तीस हजार सूत्रों की ग्रन्थनपूर्वक (षष्ठकं) छठे (महाबन्धाह्वयं) महाबन्ध नामक (असौ महात्मा) महा महिमाधारी इन महात्मा भूतबलि ने (व्यरचयत्) रचा अर्थात् बनाया।

नोट– (१३९वें) श्लोक का प्रथम चरण-ग्रन्थस्य षट्सहस्र सूत्राण्यथ होना उपयुक्त लगता है।

अर्थ–इसके अनन्तर महात्मा भूतबलि ने उन पुष्पदन्त आचार्य के शिष्य जिनपालित द्वारा पढ़ी गई सत्प्ररूपणा को सुनकर जिनवाणी के पिपासु भव्य जीवों को अल्पआयु तथा अल्पबुद्धि का जानकर तथा पुष्पदन्त गुरु के षट्खण्डागम की रचना के अभिप्राय को जानकर द्रव्यप्ररूपणाधिकार के बाद पुष्पदन्त गुरु द्वारा लिखित जिनपालित द्वारा सुनाये गये सौ सूत्रों सहित ६ हजार सूत्र प्रमाण ग्रन्थ की रचना कर तीस हजार सूत्रों के ग्रथनपूर्वक छठे महाबन्ध नामक ग्रन्थ को बनाया उन पाँचों खण्डों के नाम कहते हैं सो सुनिये।

आद्यं जीवस्थानं क्षुल्लकबन्धाह्वयं द्वितीयमतः।
बन्दस्वामित्वं भाववेदनावर्गणाखण्डे ॥१४१॥

अन्वयार्थ– (आद्यं) पहला (जीवस्थानं) जीवस्थान (अतः द्वितीयं) इसके अनन्तर दूसरा (क्षुल्लक बन्धाह्वयं) क्षुल्लकबन्ध खुद्दाबन्ध नामका,

(बन्धस्वामित्वं) तीसरा बन्ध स्वामित्व अनन्तर (भाववेदनावर्गणाखण्डे) वेदना तथा वर्गणा खण्ड।

अर्थ– इनमें पहला जीवस्थान, दूसरा क्षुल्लक बन्ध, तीसरा बन्ध स्वामित्व, चौथा वेदना खण्ड तथा पाँचवाँ-वर्गणा खण्ड थे।

एवं षट्खण्डागमरचनां प्रविधाय भूतवल्यार्यः।
आरोप्यासद्भावस्थापनया पुस्तकेषु ततः ॥१४२॥
ज्येष्ठसितपक्षपञ्चम्यां चातुर्वर्ण्यसंघसमवेतः।
तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वकं पूजाम् ॥१४३॥

अन्वयार्थ– (एवं) इस प्रकार (भूतवल्यार्यः) भूतवलि महाराज ने (षट्खण्डागम रचनां) षट्खण्डागम की रचना को (प्रविधाय) करके (ततः) अनन्तर (असद्भाव स्थापनया) असद्भाव स्थापना द्वारा (पुस्तकेषु) पुस्तकों में (आरोप्य) आरोपण करके, (ज्येष्ठसितपक्षपञ्चम्यां) ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी के दिन (चातुर्वर्ण्यसंघसमवेतः) मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविका रूप चातुर्वर्ण्य संघ से युक्त हुआ (तत्पुस्तकोपकरणैः) उन पुस्तकों के उपकरणों द्वारा (क्रियापूर्वकं) विधिपूर्वक (पूजां) पूजा (व्यधात्) की।

अर्थ– इस प्रकार भूतवलि महाराज ने षट्खण्डागम ग्रन्थ की रचना की। अनन्तर असद्भाव स्थापना से पुस्तकों में आरूढ़कर चातुवर्ण्य संघ की (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) सन्निधि में ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी के दिन पुस्तक रूप उपकरणों द्वारा विधिपूर्वक पूजा की।

श्रुतपञ्चमीति तेन प्रख्यातिं तिथिरियं परामाप।
अद्यापि येन तस्यां श्रुतपूजां कुर्वते जैनाः ॥१४४॥

अन्वयार्थ– (तेन) उस कारण से (इयं तिथिः) यह तिथि, (श्रुत पञ्चमीति) श्रुतपञ्चमी इस रूप में (परां प्रख्यातिं) उत्कृष्ट ख्याति को प्राप्त हुई (अद्यापि) आज भी (जैनाः) जैन लोग (येन) जिस कारण से (श्रुतपूजां) श्रुतपूजा (कुर्वते) करते हैं।

अर्थ– उस कारण यह ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी की तिथि श्रुत पञ्चमी के नाम से पर्व के रूप में अत्यन्त प्रसिद्धि को प्राप्त हुई जिसके कारण जैन समुदाय आज भी इस दिन श्रुतज्ञान की पूजा करते हैं।

जिनपालितं ततस्तं भूतबलिः पुष्पदन्तगुरुपार्श्वम् ।
षट्खण्डान्यप्यध्यगमयत्तत्पुस्तकसमेतम् ॥१४५॥

अन्वयार्थ- (ततः) तदनन्तर (भूतबलि) भूतबलि महाराज ने (तं जिनपालितं) उन जिनपालित को (पुष्पदन्तगुरुपार्श्वम्) पुष्पदन्त गुरु के निकट (एतत् तत् पुस्तकम्) यह वह षट्खण्डागम नामक पुस्तक (अध्यगमयत्) भेजी।

अर्थ- तदनन्तर भूतबलि महाराज ने उस जिनपालित से पुष्पदन्त गुरु के निकट षट्खण्डागम नामक यह पुस्तक भिजवाई।

अथ पुष्पदन्तगुरुरपि जिनपालितहस्तसंस्थितमुदीक्ष्य ।
षट्खण्डागमपुस्तकमहो मया चिन्तितं कार्यम् ॥१४६॥
सम्पन्नमिति समस्तांगोत्पन्नमहाश्रुतानुरागभरः ।
चातुर्वर्ण्यसुसंघान्वितो विहितवान् क्रियाकर्म ॥१४७॥

अन्वयार्थ- (अथ) इसके अनन्तर (पुष्पदन्तगुरुरपि) पुष्पदन्त गुरु ने भी (जिनपालितहस्तसंस्थितम्) जिनपालित के हाथ में स्थित (षट्खण्डागम पुस्तकं) षट्खण्डागम नामक ग्रन्थ को (उदीक्ष्य) अच्छी तरह देखकर (अहो मया चिन्तितं कार्य सम्पन्नं) 'अरे मेरे द्वारा सोचा गया कार्य होगया है' (इति) इस प्रकार (समस्तांगोत्पन्नमहामतानुरागभरः) समस्त अंगों में उत्पन्न जो महान् श्रुतानुराग उससे भरा हुआ (चातुर्वर्ण्यसंघान्वितः) चातुर्वर्ण्य संघ से युक्त हुआ (क्रिया-कर्म) कृतिकर्म (पूजा कार्य) (विहितवान्) किया।

अर्थ- तदनन्तर पुष्पदन्त गुरु ने भी जिनपालित के हाथ में सुस्थित षट्खण्डागम ग्रन्थ को भले प्रकार से देखकर आश्चर्य में पड़ते हुए। "अरे! मेरे द्वारा विचारा गया कार्य सम्पन्न हो गया" कहकर समस्त अंगों में उल्लास से भरकर चातुर्वर्ण्य- मुनि आर्यिका श्रावक-श्राविका रूप संघ से युक्त होकर पूजा की।

गन्धाक्षतमाल्याम्बरवितानघण्टाध्वजादिभिः प्राग्वत् ।
श्रुतपञ्चम्यामकरोत्सिद्धान्तसुपुस्तकमहेज्याम् ॥१४८॥

अन्वयार्थ- अनन्तर पुष्पदन्ताचार्य ने (प्राग्वत्) पहले की भाँति अर्थात् जैसी सिद्धान्त पूजा भूतबलि आचार्य ने की थी उसी तरह (गन्धाक्षतमाल्याम्बरवितानघण्टाध्वजादिभिः) गन्ध, अक्षत, माला, वस्त्र,

चन्दोवा, घण्टा आदि के द्वारा (श्रुतपञ्चम्यां) श्रुतपञ्चमी के दिन (सिद्धान्तसुपुस्तकमहेज्याम्) सिद्धान्त महागम की पूजा (अकरोत्) की।

अर्थ–उस पुष्पदन्ताचार्य ने भी भूतबलि आचार्य की भांति श्रुतपञ्चमी के ही दिन उस सिद्धान्त षट्खण्डागम की बड़े विधिविधान से अति उत्साहपूर्वक पूजा की।

एवं षट्खण्डागमसूत्रोत्पत्तिं प्ररूप्य पुनरधुना।
कथयामि कषायप्राभृतस्य सत्सूत्रसम्भूतिम् ॥१४६॥

अन्वयार्थ– (एवं) इस प्रकार (षट्खण्डागमसूत्रोत्पत्तिं) षट्खण्डागम सूत्र की उत्पत्ति का (प्ररूप्य) प्ररूपण करके (पुनः अधुना) फिर इस समय (कषायप्राभृतस्य सत्सूत्र सम्भूतिं) कषायप्राभृत सत्सूत्र की उत्पत्ति को (कथयामि) कहता हूँ।

अर्थ– इस प्रकार षट्खण्डागम सूत्र की उत्पत्ति का प्ररूपण करके फिर इस समय कषायप्राभृत सूत्र की उत्पत्ति कहता हूँ- यह ग्रन्थकार इन्द्रनन्दी की प्रतिज्ञा है।

ज्ञानप्रवादसंज्ञकपञ्चमपूर्वस्थदशमवस्तुतृतीय।
प्रायोदोषप्राभृतज्ञोऽभूद् गुणधरमुनीन्द्रः ॥१५०॥

अन्वयार्थ- (ज्ञानप्रवादसंज्ञक) ज्ञानप्रवादनामक (पञ्चमपूर्वस्थदशमवस्तु) पंचमपूर्व की दशम वस्तु के (तृतीय प्रायोदोस प्राभृतज्ञः) तृतीय प्रायोदोष/पेज्यदोष प्राभृत को जानने वाले (गुणधर मुनीन्द्रः अभूत) गुणधर मुनीन्द्र हुए।

अर्थ– ज्ञानप्रवाद नामक पञ्चम पूर्व की दशम वस्तु के तृतीय प्रायोदोष (पेज्ज दोस) प्राभृत को जानने वाले गुणधर मुनीन्द्र हुए।

गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः।
न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात् ॥१५१॥

अन्वयार्थ– (गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापर क्रमः) पेज्ज दोस प्राभृत-कषायपाहुड़ के कर्ता तथा गुणधर पुष्पदन्त भूतवलि आचार्य के सिद्धान्त ज्ञान गुरु धरसेन के कुल गुरुओं दीक्षा गुरुओं का पूर्वापर क्रम (अस्माभिः) हम इन्द्रनन्दि आदि द्वारा (तदन्वय कथकागम मुनिजना भावात्) उनके गुरुवंश को कहने वाले आगम एवं मुनिजनों का अभाव होने से (न ज्ञायते) नहीं जाना जाता है।

अर्थ–श्री इन्द्रनन्दि जो इस श्रुतावतार के कर्ता हैं। कहते हैं कि - पेज्जदोस अपर नाम 'कषाय पाहुड़' ग्रन्थ के कर्ता आचार्य गुणधर एवं पुष्पदन्त-भूतबलि मुनिराजों को सिद्धान्त शास्त्र का ज्ञान देने वाले तथा 'योनिपाहुड' ग्रन्थ के कर्ता महा मर्मज्ञ आचार्य धरसेन स्वामी के परम्परा गुरुओं का पूर्वापर क्रम हमें उनकी गुरु परम्परा को कहने वाले आगम एवं मुनिजनों के अभाव के कारण अज्ञात है।

अथ गुणधरमुनिनाथः सकषायप्राभृतान्वयं तत्प्रायो-।
दोषप्राभृतकापरसंज्ञां साम्प्रतिकशक्तिमपेक्ष्य ॥१५२॥
त्र्यधिकाशीत्या युक्तं शतं च मूलसूत्रगाथानाम्
विवरणगाथानां च त्र्यधिकं पञ्चाशतकमकार्षीत् ॥१५३॥
एवं गाथासूत्राणि पञ्चदशमहाधिकाराणि।
प्रविरच्य व्याचख्यौ स नागहस्त्यार्यमंक्षुभ्याम् ॥१५४॥

अन्वयार्थ– (अथ) अनन्तर (गुणधर मुनिनाथः) गुणधर मुनिराज (सकषायप्राभृतान्वयं) कषाय प्राभृत नामक (तत्प्रायोदोष प्राभृतापरसंज्ञां) प्रायोदोष प्राभृत इस दूसरे नाम वाले ग्रन्थ को (साम्प्रतिकशक्तिमपेक्ष्य) अपनी (दैहिक) वर्तमान कालीन शक्ति को देखकर (त्र्यधिकाशीत्या युक्तं) तीन अधिक अस्सी तेरासी ऊपर (शतंमूलसूत्रगाथानां) सौ मूलगाथा सूत्रों के अर्थात् एक सौ तेरासी गाथा सूत्रों से युक्त (एवं च विवरण गाथानां त्र्यधिक पञ्चाशतकम्) तथा विवरण गाथाओं का तीन अधिक पचास अर्थात् (५३) त्रेपन (अकार्षीत्) किया। (एवं) इस प्रकार (पञ्चदश महाधिकाराणि) पन्द्रह अधिकारों ने उस पेज्जदोस पाहुडको (नागहस्त्यार्यमंक्षुभ्याम्) नागहस्ति तथा आर्यमंक्षु के लिये (व्याचख्यौ) व्याख्यान किया।

अर्थ– इसके अन्तर उन गुणधर मुनीन्द्र ने कषाय प्राभृत नामक जिसका दूसरा नाम पेज्जदोस पाहुड प्रायोदोष प्राभृत था अपनी सम्प्रति कालीन (दैहिक) शक्ति को देखकर एक सौ मूल गाथा सूत्रों से युक्त तथा त्रेपन वृत्ति गाथाओं से युक्त ग्रन्थ की रचना की जिसमें कि कुल पंद्रह महाधिकार थे। इसे रचकर फिर अपने शिष्य नागस्ति और आर्यमंक्षु को उसका विशद व्याख्यान किया।

पार्श्वे तयोर्द्वयोरप्यधीत्य सूत्राणि तानि यतिवृषभः।
यतिवृषभनामधेयो बभूव शास्त्रार्थनिपुणमतिः ॥१५५॥

अन्वयार्थ- (तयोर्द्वयोरपि) उन दोनों नागहस्ति एवं आर्यमंक्षु के (पार्श्वे) निकट में (तानि सूत्राणि अधीत्य) उन गाथा सूत्रों को पढ़कर (यतिवृषभः) यतियों में श्रेष्ठ (यतिवृषभनामधेयः) यतिवृषभ नामक मुनि (शास्त्रार्थ निपुणमतिः) शास्त्रों के अर्थ में निपुणबुद्धि (बभूव) हो गये।

अर्थ- आचार्य गुणधर से उनके शिष्य नागहस्ति और आर्यमंक्षु ने कसायपाहुड सुत्त का विशद व्याख्यान पूर्ण प्राप्त किया और इन दोनों के सान्निध्य में बैठकर यतियों में श्रेष्ठ यतिवृषभ नामक मुनि ने इस आगम शास्त्र के गाथा सूत्रों के अर्थ में निपुणता प्राप्त की।

तेन ततो यतिपतिना तद्गाथावृत्तिसूत्ररूपेण।
रचितानि षट्सहस्रग्रन्थान्यथ चूर्णिसूत्राणि ॥१५६॥

अन्वयार्थ-(अथ) इसके अनन्तर (तेन यतिपतिना) उस यतिवृषभ नामक यतिपति द्वारा (तद्गाथावृत्तिसूत्ररूपेण) उन गाथा की वृत्ति रूप सूत्रों द्वारा (षट्सहस्रग्रन्थानि चूर्णिसूत्राणि) छह हजार श्लोक प्रमाण पर चूर्णि सूत्रों की (रचितानि) रचना की गई।

अर्थ-इसके अनन्तर उन यतिश्रेष्ठ यतिवृषभ द्वारा गाथाओं की वृत्ति के सूत्र रूप में छह हजार गाथा (श्लोक) प्रमाण सूत्रों को चर्णि सूत्रों के रूप में रचा गया।

तस्यान्ते पुनरुच्चारणादिकाचार्यसंज्ञकेन ततः।
सूत्राणि तानि सम्यगधीत्य ग्रन्थार्थरूपेण ॥१५७॥
द्वादशगुणितसहस्रग्रन्थान्युच्चारणाख्यसूत्राणि।
रचितानि वृत्तिरूपेण तेन तच्चूर्णिसूत्राणाम् ॥१५८॥

अन्वयार्थ- (तस्यान्ते) उन यतिवृषभ आचार्य के निकट (पुनः) फिर (उच्चारणादिक आचार्य संज्ञकेन) उच्चारण नामक आचार्य आदि द्वारा (ग्रन्थार्थरूपेण) ग्रन्थ। गाथा के अर्थ रूप में (तानि सूत्राणि) वे सूत्र (सम्यक् अधीत्य) सम्यक् प्रकार पढ़कर (द्वादशगुणितसहस्रग्रन्थानि) द्वादश हजार गाथा वाले, (उच्चारणाख्यसूत्राणि) उच्चारणनामक सूत्रों को (तच्चूर्णि सूत्राणां) उन यतिवृषभाचार्य के चूर्णि सूत्रों की (वृत्तिरूपेण) व्याख्यान रूप से (रचितानि) लिखे।

अर्थ-उन यतिश्रेष्ठ यतिवृषभाचार्य के निकट उच्चारणाचार्य नामक मुनिराज ने गाथाओं के अर्थ रूप में उन सूत्रों (गाथाओं) को भले प्रकार पढ़कर

और उसका विशद अर्थ जानकर बारह हजार प्रमाण उन चूर्णिसूत्रों की व्याख्या में अपने ही नाम से उनके व्याख्यान-विवृत्ति रूप से उच्चारणा सूत्र बनाये।

गाथाचूर्ण्युच्चारणसूत्रैरुपसंहृतं कषायाख्य।
प्राभृतमेवं गुणधरयतिवृषभोच्चारणाचार्यैः ॥१५९॥

अन्वयार्थ–(गाथाचूर्ण्युच्चारणसूत्रैः) गाथा, चूर्णि एवं उच्चारण सूत्र गाथा गुणधर रचित अर्थात् चूर्णि (यतिवृषभरचित) तथा उच्चारणा सूत्रों से उच्चारणाचार्य रचित (उपसंहृतं) समाहित (एवं कषायाख्य प्राभृतं) इस प्रकार कषायप्राभृत (गुणधर यतिवृषभोच्चारणाचार्यैः) गुणधराचार्य, यतिवृषभाचार्य एवं उच्चारणा-चार्य विरचित है।

अर्थ– इस प्रकार कषाय प्राभृत नामक आगम ग्रन्थ गाथा चूर्णि और उच्चारणासूत्रों से युक्त है। इनमें से आचार्य गुणधर द्वारा गाथा सूत्र, आचार्य यतिवृषभ द्वारा चूर्णि सूत्र तथा उच्चारणाचार्य द्वारा उच्चारणा सूत्र रचे गये।

एवं द्विविधो द्रव्यभावपुस्तकगतः समागच्छन्।
गुरुपरिपाट्या ज्ञातः सिद्धान्तः कुण्डकुन्दपुरे ॥१६०॥
श्रीपद्मनन्दिमुनिना सोऽपि द्वादशसहस्रपरिमाणः।
ग्रन्थपरिकर्मकर्त्ता षटखण्डाद्यत्रिखण्डस्य ॥१६१॥

अन्वयार्थ– (एवं) इस प्रकार (द्रव्यभावपुस्तकगतः द्विविधः) द्रव्य और भाव पुस्तक गत दो प्रकार का (सिद्धान्तः) सिद्धान्त (गुरुपरिपाट्या) गुरुपरम्परा से (समागच्छन्) आया हुआ (कुण्डकुन्दपुरे) कुण्ड कुन्दपुर में (श्रीपद्मनन्दिमुनिना) पद्मनन्दी नाम के मुनि द्वारा (ज्ञातः) जाना गया। (सोऽपि) उन पद्मनन्दी मुनिने भी (षट्खण्डाद्यत्रिखण्डस्य) षट्खण्डागम के आदि के तीन खण्डों का (द्वादशसहस्रपरिमाणः) बारह हजार गाथा प्रमाण (परिकर्म ग्रन्थ) परिकर्म नामक ग्रन्थ को (अकरोत्) किया।

विशेष (द्वादशसहस्रपरिमाणं ग्रंथं परिकर्ममकरोत्) ऐसी संस्कृत होना ठीक जंचता है।

अर्थ– इस प्रकार द्रव्य, भाव रूप पुस्तक गत दो प्रकार का सिद्धान्त गुरु परिपाटी से कुण्डकुन्दपुर में पद्मनन्दी मुनि द्वारा (प्रचलितनाम आचार्य कुन्दकुन्द) जाना गया। उन्होंने भी बारह हजार गाथा प्रमाण परिकर्म पर टीका या भाष्य रूप में की।

काले ततः कियत्यपि गते पुनः शामकुण्डसंज्ञेन ।
आचार्येण ज्ञात्वा द्विभेदमप्यागमः कात्स्न्यात् ॥१६२॥
द्वादशगुणितसहस्रं ग्रन्थं सिद्धान्तयोरुभयोः ॥
षष्ठेन विना खण्डेन पृथुमहाबन्धसंज्ञेन ॥१६३॥
प्राकृतसंस्कृतकर्णाटभाषया पद्धतिः परा रचिता ।
तस्मादारात्पुनरपि काले गतवति कियत्यपि च ॥१६४॥
अथ तुम्बुलूरनामाऽचार्योऽभूत्तुम्बुलूरसद्ग्रामे ।
षष्ठेन विना खण्डेन सोऽपि सिद्धान्तयोरुभयोः ॥१६५॥
चतुरधिकाशीतिसहस्रग्रन्थरचनया युक्ताम् ।
कर्णाटभाषयाऽकृत महतीं चूडामणिं व्याख्याम् ॥१६६॥
सप्तसहस्रग्रन्थां षष्ठस्य च पञ्चिकां पुनरकार्षीत् ।

अन्वयार्थ– (ततः) तदनन्तर (कियत्यपि काले गते) कितना ही समय व्यतीत होने पर (पुनः) फिर (शामकुण्डसंज्ञेन) शामकुण्ड नामक (आचार्येण) आचार्य द्वारा (आगमः) आगम (द्विभेदमपि) दोनों भेद रूप षट्खण्डागम एवं कषायपाहुड (कात्स्न्यात्) पूरी तरह (ज्ञात्वा) जानकर (उभयो सिद्धान्तयोः) दोनों आगमों को (द्वादशसहस्रं गुणितं ग्रन्थं) बारह हजार गाथाओं को (षष्ठेन खण्डेन विना) षट्खण्डागम के छठे वर्गणा खण्ड के अतिरिक्त जिसका दूसरा नाम महाबन्ध है के अतिरिक्त (प्राकृतसंस्कृतकर्णाटभाषया) प्राकृत-संस्कृत एवं कन्नड़ तीनों भाषाओं में (परा पद्धतिः रचिता) उत्कृष्ट पद्धति चूर्णि और वृत्ति सूत्रों की पद विच्छेदक टीका बनाई गई (अथ) अनन्तर (तुम्बुलूर सद्ग्रामे) तुम्बुलूर नामक उत्तम ग्राम में (तुम्बुलूरनामाचार्योऽभूत्) तुम्बुलूर नामक आचार्य हुए (सोऽपि) उन्होंने भी (उभयो सिद्धान्तयोः) दोनों आगम ग्रन्थों की छठे खण्ड के बिना (चतुरधकाशीतिसहस्रग्रन्थरचनया) चौरासी हजार गाथा प्रमाण रचना से (युक्तां) युक्त (कर्णाटभाषया) कन्नड़ भाषा में (महतीं) विशाल (चूडामणिं व्याख्याम्) चूडामणि नामक व्याख्या (अकृत) व्याख्या की। (च) तथा (षष्ठस्य) छठे वर्गणा खण्ड की (सप्तसहस्रग्रन्थां) सात हजार गाथा प्रमाण (पञ्जिकां) पञ्जिका नामक टीका (अकार्षीत्) की।

अर्थ– कुछ समय व्यतीत होने पर शामकुण्ड नामक आचार्य ने दोनों आगम

ग्रन्थों-षट्खण्डागम व कसायपाहुड को पूरी तरह जानकर बारह हजार गाथाओं प्रमाण [illegible] है उसे छोड़कर प्राकृत संस्कृत तथा कन्नड़ तीनों भाषाओं में उत्कृष्ट 'पद्धति' नामक व्याख्या (वृत्ति सूत्रों के विषम पदों का विश्लेषण कर समझाने वाली व्याख्या 'पद्धति' कहलाती है वित्ति सुत्त विसमपदा भंजिए विवरणाए पइढइ उपएसादो-जयधवल पु. पृष्ठ ५२) उनके कुछ काल निकट तुम्बलूरनामक सुन्दर ग्राम में होने वाले तुम्बुलूर नामक आचार्य थे उन्होंने भी दोनों सिद्धान्त ग्रन्थों (षट्खण्डागम व कषायपाहुड) का षट्खण्डागम के छठे खण्ड को छोड़कर चौरासी हजार गाथा प्रमाण रचना से युक्त कन्नड़ भाषा में चूड़ामणि नामक एक विशाल टीका की। तथा षट्खण्डागम के षष्ठ महाबन्ध से प्रसिद्ध वर्गणा खण्ड पर सात हजार गाथाओं प्रमाण पञ्जिका (पञ्जिका) नामक टीका लिखी।

कालान्तरे ततः पुनरासन्ध्यां पलरि (पलित) तार्किकार्कोऽभूत्
श्रीमान् समन्तभद्रस्वामीत्यथ सोऽप्यधीत्य तं द्विविधिम्।
सिद्धान्तमतः षट्खण्डागमगतखण्डपञ्चकस्यः पुनः ॥१६८॥
अष्टौचत्वारिंशत्सहस्र सद्ग्रन्थरचनया युक्ताम्।
विरचितवानतिसुन्दरमृदुसंस्कृतभाषया टीकाम् ॥१६९॥

अन्वयार्थ– (कालान्तरे) कुछ समय के पश्चात (ततः पुनः) फिर (पलित तार्किकाऽर्कः) वृद्ध तार्किक सूर्य (श्रीमान् समन्तभद्र स्वामी इति) श्रीमान् समन्तभद्र स्वामी इस नामवाले हुए (सोऽपि) उन्होंने भी (आसंध्यां) अपनी जीवन की संध्या में- वृद्धावस्था में (तद्विविधं) उन दोनों सिद्धान्तों को (अधीत्य) पढ़कर (षट्खण्डागमगतखण्डपञ्चकस्य) षट्खण्डागम के पाँच खण्डों की (अष्टौचत्वारिंशत्सहस्रग्रन्थरचनया युक्ताम्) अड़तालीस हजार गाथाओं प्रमाण रचना से युक्त (अतिसुन्दरमृदुसंस्कृतभाषया) अत्यन्त सुन्दर मृदु संस्कृत भाषा से युक्त (टीका विरचितवान्) टीका बनाई।

अर्थ– इसके बाद कालान्तर में वृद्ध तार्किक सूर्य श्रीमान् समन्तभद्र स्वामी भी हुए उन्होंने भी दोनों सिद्धान्त ग्रन्थों को पढ़कर षट्खण्डागम के पाँच खण्डों पर अड़तालीस हजार गाथा प्रमाण अत्यन्त सुन्दर टीका लिखी जो अत्यन्त मृदु संस्कृत भाषा में थी।

विलिखन् द्वितीयसिद्धान्तस्य व्याख्यां सधर्मणा स्वेन।
द्रव्यादिशुद्धिकरणप्रयत्नविरहात्प्रतिनिषिद्धम् ॥१७०॥

अन्वयार्थ- (द्वितीय सिद्धान्तस्य) दूसरे कषायपाहुड आगम सिद्धान्त की (व्याख्यां विलिखन्) व्याख्या लिखते हुए (स्वेन सधर्मणा) अपने सहधर्मी द्वारा (द्रव्यादिशुद्धिकरणप्रयत्नविरहात्) द्रव्यादिक की शुद्ध करने के प्रयत्न से रहित होने के कारण (प्रतिनिषिद्धम्) निषेध कर दिये गये।

अर्थ- अनन्तर द्वितीय कषाय प्राभृत सिद्धान्त की टीका लिखने को उद्यत हुए समन्तभद्र स्वामी को उनके एक सहधर्मी ने द्रव्य शुद्धि आदि का विचार रखने के प्रयत्न रहित होने से निषेध कर दिया।

एवं व्याख्यानक्रममवाप्तवान् परमगुरुपरम्परया।
आगच्छन् सिद्धान्तो द्विविधोऽप्यतिनिशितबुद्धिभ्याम् ॥१७१॥
शुभरविनन्दिमुनिभ्यां भीमरथिकृष्णमेखयोः सरितोः।
मध्यमविषये रमणीयोत्कलिकाग्रामसामीप्यम् ॥१७२॥
विख्यातमगणवल्लीग्रामेऽथ विशेषरूपेण।
श्रुत्वा तयोश्च पार्श्वे तमशेषं बप्पदेवगुरुः ॥१७३॥
अपनीय महाबन्धं षट्खण्डाच्छेषपञ्चखण्डे तु।
व्याख्याप्रज्ञप्तिं च षष्ठं खण्डं च तत् संक्षिप्य ॥१७४॥
षण्णां खण्डानामिति निष्पन्नानां तथा कषायाख्य-
प्राभृतकस्य च षष्ठिसहस्रग्रन्थप्रमाणयुताम् ॥१७५॥
व्यलिखत्प्राकृतभाषारूपां सम्यक्पुरातनव्याख्याम्।
अष्टसहस्रग्रन्थां व्याख्यां पञ्चाधिकां महाबन्धे ॥१७६॥

अन्वयार्थ- (एवं) इस तरह (गुरुपरम्परया आगच्छन्) गुरु परम्परा से आता हुआ (व्याख्यानक्रमम् अवाप्तवान्) व्याख्यान क्रम को प्राप्त हुआ (द्विविधोऽपि) दोनों प्रकार का (सिद्धान्तः) सिद्धान्त (अतिनिशितबुद्धिभ्याम्) अत्यन्त तक्ष्ण बुद्धिवाले (शुभरविनन्दिमुनिभ्याम्) शुभनन्दि एवं रविनन्दि नामक मुनियों द्वारा (भीमरथिकृष्णमेखयो सरितोः) भीमरथी तथा कृष्ण मेघ इन दोनों नदियों के (मध्यमविषये) मध्यवर्ती देश के मध्य में (रमणीयोत्कलिकाग्रामसामीप्यम्) सुन्दर

उत्कलिका गाँव के निकट (विख्यातःमगणवल्लीग्रामे) प्रसिद्ध मगण वल्ली नामक गाँव में (विशेषरूपेण) विशेष रूप से (श्रुत्वा) सुनकर (बप्पदेव गुरुः) बप्पदेव गुरु ने (तयोः पार्श्वे) उन दोनों मुनिराजों के निकट (तम् अशेषं) उस सिद्धान्त को पूर्णरीति से जानकर (महाबन्धं अपनीय) महाबन्ध को छोड़कर (षट्खण्डच्छेपञ्चखण्डे) षटखण्डागम के शेष पाँच खण्डों पर (व्याख्याप्रज्ञप्तिं ततः षष्ठं खण्डं संक्षिप्य) व्याख्या प्रज्ञप्ति नामक टीका तथा छठे खण्ड को संक्षिप्त कर (षण्णां खण्डानां निष्पन्नानां) छहों खण्डों की व्याख्या निष्पन्न होने के उपरान्त (कषायाख्य प्राभृतकस्य) कषाय नामक प्राभृत की (प्राकृतभाषारूपां) प्राकृत भाषामय (षष्ठिसहस्रग्रन्थप्रमाण युताम्) साठ हजार गाथा प्रमाण (पुरातनव्याख्यां सम्यक् व्यलिखत्) पुरातन व्याख्यान को पूर्वाचार्यों के क्रम को आगे बढ़ाते हुए भले प्रकार लिखी (महाबन्धे च) तथा महाबन्ध षट्खण्डागम के षष्ठ खण्ड पर (पञ्चाधिकां अष्टसहस्रां) पाँच अधिक आठ हजार श्लोक प्रमाण व्याख्या लिखी।

अर्थ– इस प्रकार व्याख्यान क्रम को प्राप्त गुरु परम्परा से आया हुआ दोनों प्रकार का सिद्धान्त अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले शुभनन्दि एवं रविनन्दि गुरु से भीमरथि एवं कृष्णमेघ नदियों के मध्यवर्ती रमणीय उत्कलिका गाँव के निकट विख्यात मगण वल्ली नामक ग्राम में सुनकर और उन्हीं दोनों के निकट बैठकर बप्प देव गुरु (मुनि ने) पूरी तरह उसका अध्ययन कर महाबन्ध को छोड़कर षट्खण्डागम के महाबन्ध नामक षष्ठ खण्ड पर संक्षिप्त व्याख्या लिखी। षट्खण्डागम की व्याख्या निष्पन्न हो जाने पर साठ हजार गाथाओं प्रमाण कषाय प्राभृत की भी व्याख्या लिखी फिर महाबन्ध पर पुरातन व्याख्या को प्राकृत भाषा रूप पाँच अधिक आठ हजार गाथा प्रमाण व्याख्या लिखी।

काले गते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटपुरवासी।
श्रीमानेलाचार्यो बभूव सिद्धान्ततत्त्वज्ञः ॥१७७॥

अन्वयार्थ– (कियत्यपि काले गते) कितना ही समय व्यतीत होने पर (ततःपुनः) इसके बाद फिर (चित्रकूटपुरवासी) चित्रकूट पुर में रहने वाले (श्रीमान् एलाचार्यः) श्रीमान् एलाचार्य (सिद्धान्ततत्त्वज्ञः) सिद्धान्त तत्त्व को जानने वाले (बभूव) हुए।

अर्थ– कितना ही समय व्यतीत होने के अनन्तर चित्रकूटपुर निवासी श्रीमान् एलाचार्य सिद्धान्त तत्त्वों के ज्ञाता हुए।

तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरुः।
उपरितमनिबन्धनाद्यधिकारानष्ट च लिलेख ॥१७८॥

अन्वयार्थ– (तस्य समीपे) चित्रकूटपुर में श्रीमान् एलाचार्य महाराज के पास (सकलं सिद्धान्तं अधीत्य) सम्पूर्ण सिद्धान्त पढ़कर (वीरसेन गुरुः) वीरसेन गुरु (उपरितमनिबन्धनादि) ऊपर निबन्धन आदि (अष्ट अधिकारान्) अष्ट अधिकारों को (लिलेख) लिखा।

अर्थ– उन चित्रकूटपुर में निवास करने वाले श्रीमान् एलाचार्य के निकट सम्पूर्ण सिद्धान्तों को पढ़कर वीरसेन गुरु ने उपरितम निबन्धनादि आठ अधिकारों को लिखा।

आगत्य चित्रकूटात्ततः स भगवान्गुरोरनुज्ञानात्।
वाटग्रामे चात्राऽऽनतेन्द्रकृतजिनगृहे स्थित्वा ॥१७९॥
व्याख्याप्रज्ञप्तिमवाप्य पूर्वषट्खण्डतस्ततस्तस्मिन्।
उपरितमबन्धनाद्यधिकारैरष्टादशविकल्पैः ॥१८०॥
सत्कर्मनामधेयं षष्ठं खण्डं विधाय संक्षिप्य।
इति षण्णां खण्डानां ग्रन्थसहस्रैर्द्विसप्तत्या ॥१८१॥
प्राकृतसंस्कृतभाषामिश्रां टीकां विलिख्य धवलाख्याम्।
जयधवलां च कषायप्राभृतके चतसृणां विभक्तीनाम् ॥१८२॥
विंशतिसहस्रसद्ग्रन्थरचनया संयुतां विरच्य दिवम्।
यातस्ततः पुनस्तच्छिष्यो जयसेनगुरुनामा ॥१८३॥
तच्छेषं चत्वारिंशता सहस्रैः समापितवान्।
जयधवलैवं षष्टिसहस्रग्रन्थोऽभवट्टीका ॥१८४॥

अन्वयार्थ– (ततः स भगवान्) तदनन्तर वह भगवान वीरसेन आचार्य (गुरोरनुज्ञानात्) गुरु की आज्ञा से (चित्रकूटात् आगत्य) चित्रकूटपुर से आकर (वाटग्रामे) वाटग्राम में (अत्र) यहाँ (आनतेन्द्रकृतजिनगृहे) आनतेन्द्र द्वारा निर्मित जिनेन्द्र भगवान् के मन्दिर में (स्थित्वा) रहकर (तस्मिन्) उसमें (व्याख्याप्रज्ञप्तिम् अवाप्य) व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक टीका को प्राप्त कर (पूर्वषट् खण्डतः) पूर्व षट्खण्ड से (उपरितमबन्धनादि अष्टादश विकल्पैः अधिकारैः) उपरितम बन्धनादि अठारह

अधिकारों द्वारा (सत्कर्मनामधेयं) सत्कर्म नामक का (षष्ठं खण्डं) छठवें खण्ड को (संक्षिप्य) संक्षेप करके (इति) इस प्रकार (षण्णां खण्डानां) छहों खण्डों की (द्विसप्त्या) ग्रन्थ सहस्रैः बहत्तर हजार गाथा प्रमाण (प्राकृत संस्कृत भाषा मिश्रां) प्राकृत संस्कृत मिश्र भाषा रूप (धवलाख्यां टीकां विलिख्य) धवला नामक टीका लिखकर (कषायप्राभृतके) कषायप्राभृत पर (चतसृणां विभक्तीनां) चार विभक्तियों की (विंशतिसहस्रसद्ग्रन्थरचनया) बीस हजार गाथा प्रमाण रचना से (युक्तां) युक्त (जयधवलाख्यां) जयधवला नामक टीका (विरच्य) टीका रचकर (दिवं यातः) स्वर्ग चले गये (ततः पुनः) उसके बाद फिर (तच्छिष्यो) उनके शिष्य (जयसेन नामा गुरु) जयसेन जिनसेन नामक गुरु ने (तच्छेषं) उसके शेष भाग को (चत्वारिंशता सहस्रैः) चालीस हजार गाथा प्रमाण से (समापितवान्) समाप्त किया (एवं जयधवला) इस प्रकार जयधवला नामक टीका (षष्ठिसहस्र ग्रन्थोऽभवत्) साठ हजार गाथा प्रमाण हुई।

अर्थ– तदनन्तर वह भगवान वीरसेनाचार्य गुरु के आदेश से चित्रकूटपुर से आकर वाटग्राम में यहाँ के आनतेन्द्र द्वारा निर्मित जिन मन्दिर में ठहर कर उसमें बप्पदेव गुरु रचित 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' नामक टीका प्राप्त कर पूर्व षट्खण्ड से अर्थात् षट्खण्डागम के छठवें (महाबन्ध) खण्ड को छोड़कर शेष पाँच खण्डों की उपरितम निबन्धनादि अठारह अधिकारों द्वारा 'सत्कर्म' नामक तथा छठे खण्ड को संक्षिप्त किया इस प्रकार छहों खण्डों की बहत्तर हजार गाथाओं प्रमाण प्राकृत संस्कृत मिश्रित 'धवला' नामक टीका को लिखकर कषायप्राभृत पर चार विभक्तियों की बीस हजार गाथाओं प्रमाण जयधवला नामक टीका लिखकर स्वर्गवासी होगये। तत्पश्चात् उनके शिष्य जयसेन अपर नाम जिनसेन ने उसके (कषायप्राभृत जिस पर वीर सेनाचार्य ने जयधवला टीका लिखी) शेष भाग टीका को उससे आगे चालीस हजार गाथाओं प्रमाण में लिखकर समाप्त किया। इस प्रकार कषाय प्राभृत की जयधवला नामक टीका साठ हजार गाथा प्रमाण हुई है।

एवं श्रुतावतारो निरूपतिः श्रीन्द्रनन्दियतिपतिना।
श्रुतपञ्चम्यामृषिभिर्व्याख्येयो भव्यलोकेभ्यः ।१८५।।

अन्वयार्थ– (एवं) इस प्रकार (श्रीन्द्रनन्दियतिपतिना) श्री इन्द्रनन्दि नामक यतिपति के द्वारा (ऋषिभिः) ऋषियों के द्वारा (भव्यलोकेभ्यः) भव्यजीवों के

लिये (व्याख्येयः) व्याख्यान करने योग्य (श्रुतावतारः) श्रुतावतार (श्रुतपञ्चम्यां) श्रुतपंचमी के दिन (निरूपितः) निरूपित किया गया।

अर्थ– इस प्रकार श्री इन्द्रनन्दि मुनिराज ने भव्य जीवों को ऋषियों द्वारा व्याख्या करने योग्य यह श्रुतावार श्रुतपञ्चमी के दिन निरूपित किया।

यत्किचिदत्र लिखितं समयविरुद्धं मयाऽल्पबोधेन।
अपनीय तदागमतत्त्ववेदिनः शोधयन्तूच्चैः ॥१८६॥

अन्वयार्थ– (अल्पबोधेन मया) अल्पज्ञानवाले मेरे द्वारा (अत्र) इस श्रुतावतार नामक प्रतिज्ञापित ग्रन्थ में (यत्किंचित्) जो कुछ भी (समय विरुद्धं) शास्त्र विरुद्ध (लिखितं) लिखा गया हो (आगमतत्त्ववेदिनः) जो आगम-तत्त्व को जानने वाले (तद्-अपनीय) उसे हटा करके (उच्चैः शोधयन्तु) अच्छी तरह शोधन कर लें।

अर्थ– ग्रन्थकार श्री इन्द्रनन्द्याचार्य अपनी लघुता प्रकट करते हुए कहते हैं कि इस प्रतिज्ञा किये हुए श्रुतावतार नामक ग्रन्थ में मेरे द्वारा जो भी आगम के विरुद्ध लिखा गया हो उसे दूरकर आगम तत्त्व को जानने वाले अच्छी तरह शोधन कर लें।

श्लोकद्वयेन वृत्तेनैकेनाशीतिशतमितार्याभिः।
सप्तोत्तरद्विशत्यां ग्रन्थेनायं परिसमाप्तः ॥१८७॥
(श्लोकद्वयेन वृत्तेनैकेन चतुराशीतिशत मितार्याभिः।
सप्ताशीति च शतेन ग्रन्थेनायं परिसमाप्ती॥)

नोट– उपरिलिखित गणना के अनुसार कोष्ठकगत गाथा होनी चाहिये।

अन्वयार्थ– (श्लोकद्वयेन) दो श्लोक (एकेन वृत्तेन) एक वृत्त (चतुरशीतिशत मिता आर्याभिः) एक सौ चौरासी आर्याछन्दों द्वारा इस तरह कुल १८७ गाथा प्रमाण (अयं ग्रन्थः समाप्तः) यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

अर्थ– दो श्लोक, एक शृंधरावृत्त एवं एक सौ चौरासी गाथाओं कुल एक सौ सत्तासी पदों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

इति श्रीमदिन्द्रनन्द्याचार्यकृतः श्रुतावतारः